प्रतीक मानवता के

सार्वकालिक, सार्वदेशिक, सार्वभौमिक

[श्री कैलाश कल्पित की श्रेष्ठ कहानियाँ]

संगम प्रकाशन

१४४, मार्ग, ३

समर्पण

उन्हें
जो साहित्य के माध्यम से
समाज में
वैचारिक क्रान्ति
की
आशा रखते हैं

प्राक्कथन

आजकल कहानी संग्रहों के साथ प्रस्तावना, प्राक्कथन, पूर्वनिवेदन, भूमिका अथवा दो शब्द आदि लिखना, घिसी-पिटी परिपाटी मानी जाती है, क्योंकि कहानियाँ तो स्वयं बहुत कुछ बोलती हैं, किन्तु क्या वे सचमुच वहाँ तक बोल पायीं जैसा लेखक लिखना चाहता था, इसको परखने के लिए मेरा विश्वास है कि बिना लेखक की दृष्टि को समझे सृजन की सही समीक्षा नहीं हो सकती।

साहित्य का मन्तव्य यदि परिवेश का चित्रण करते हुए समाज के हित को साधना है तो हमें कथा सृजन में ऐसे पात्रों को प्रश्रय देकर सामने लाना होगा, जो जीवन जीने की प्रक्रिया में उन सोपानों की ओर अग्रसर होते हैं जो उन्हें किसी पर्वत पर पहुँचाने की प्रक्रिया में भले ही पाण्डवों की तरह हिमशिलाओं के वातावरण में तिल-तिल गला दें, किन्तु स्वार्थ के खड्ड में न गिराते हों।

हाँ, जीवन बहु-आयामी है, अतः पात्रों के स्वरूप भी बहु-आयामी होंगे। हमें जीवन के यथार्थ को समझने के लिए सभी प्रकार के पात्रों की प्रत्यक्ष स्थिति तथा उस स्थिति के कारण को समझने के लिए उसके पार्श्व को भी देखना होगा, किन्तु यथार्थ एवं प्रगतिशीलता के नाम पर हम एक ओर मात्र शोषित समाज की कुण्ठाओं या सेक्स की कुत्सित आकांक्षाओं को और दूसरी ओर समाज के मात्र चाई और ठगों के जीवन को ही चित्रित करते नहीं रह सकते; हमें समाज के अन्य प्रकार के पात्रों को भी प्रस्तुत करना होगा। समाज में आज भी सभी सम्प्रदायों में संवेदना से आप्लावित और स्पन्दनशील लोग हैं, साथ ही ऐसे भी हैं जो परिस्थितिवश स्वयं प्रताड़ित होते हुए भी अपने से कमजोरों को प्रताड़ित नहीं करते और न ही विषम परिस्थिति में दूसरे से कोई अवान्छित चाहते हैं। ऐसे जटिल पात्रों की प्रस्तुति लेखक की लेखकीय परिपक्वता और आयुगत अनुभव के अभाव में, नहीं हो सकती।

इस संग्रह की कहानियाँ कुछ इसी प्रकार की हैं किन्तु कहानी

'द्वन्द्व, वर्जित प्यार का' कुछ ऐसे परिवेश की कहानी है जिसके द्वन्द्व को समझने के लिए शायद वैसे अनुभव से भी गुजरना आवश्यक होगा।

एक पारिवारिक के नाते मैंने भरे-पूरे परिवार में जीवन जीने का अवसर पाया है। एक लेखक के नाते मैंने बहु-आयामी लेखन किया है। कविता, कहानी, उपन्यास अथवा वैचारिक लेख सभी कुछ लिखता रहा हूँ और उसकी पहचान भी कुछ विशेष सीमाओं तक हुई है। कथाकार के नाते बहुत प्रकार के पात्रों को यथार्थ जीवन के परिवेश में प्रस्तुत करता रहा हूँ, किन्तु मैं जैसे पात्रों को अपने लेखन का मानक बनाना चाहता हूँ, उनसे सम्बद्ध ये कुछ कहानियाँ हैं।

मेरे प्रकाशक का आग्रह था कि मैं स्वयं अपनी कहानियों से चयनित कर अपनी दृष्टि से कुछ श्रेष्ठ कहानियों का संकलन उसे दूँ। यह संकलन मेरे इसी प्रयास का प्रतिफल है, किन्तु अपने सृजन से स्वयं ऐसा कुछ छाँट लेना, जिसे सचमुच प्रतिनिधि लेखन अथवा श्रेष्ठ कहा जाय, बड़ा कठिन होता है।

साहित्य के अध्येयता ही वास्तव में वास्तविक परखी होते हैं, अत: मुझे उनकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा है।

३४१, बहादुरगंज
इलाहाबाद

कैलाश कल्पित

अनुक्रम

छाया, गाँधी की

मैं उस दिन गाजियाबाद में था ।

सुबह के दस बजते-बजते बहू ने घर से बाहर निकलने की तैयारी पूरी करते हुए मुझसे कहा—खाना बना दिया है, जब इच्छा हो तो खा लीजियेगा ।

मैंने उसके मुख की ओर देखा तो आगे बोली—मैं तो अभी बैंक जाऊँगी । रुपये निकाल कर सीधे दरियागंज चली जाऊँगी । डाक्टर को इनका टेम्परेचर चार्ट दिखाना है । ब्लड प्रेशर की रिपोर्ट भी मैंने रख ली है । जो दवाएँ डाक्टर साहब बताएँगे, लेती आऊँगी, आप इन्हें इनकी इच्छानुसार दूध या पावरोटी दे दीजियेगा ।

मैंने स्वीकारात्मक सिर हिलाया और वह अपने व्हेनेटी बैग को एक सफेद झोले में डाल कर बाहर निकल गई ।

मैं बाहर निकलता हुआ बोला—लौटते में कुछ फल आदि लेती आना । उसने हाँ, हाँ कहा और पास ही खड़े एक रिक्शे पर बैठ गई ।

स्कूटर दुर्घटना में बेटे की टांग टूट गई थी और उसका ऑपरेशन नई दिल्ली मे दरियागंज के टेम्पल नर्सिंग होम में कराया गया था । हम लोग दो दिन पूर्व ही अस्पताल से मुक्त होकर घर लौटे थे और डाक्टर को २४ घण्टे की रिपोर्ट उसके आदेशानुसार देने बहू गई थी ।

लगभग साढ़े तीन बजे बहू जब घर लौटी तो उसका चेहरा एकदम उतरा हुआ था । आते ही उसने मुझ से कहा—बाबू जी आप चार रुपये दे दीजिये, रिक्शे वाले को देना है । मैंने तुरन्त अपनी जेब से रुपये दिए और बहू के हाथ में खाली झोला देख कर पूछा—फल वगैरह कुछ नहीं लाईं मेरे यह कहते ही वह एकदम रो-पड़ी और बोली आज मुझसे बड़ी मूर्खता हो गई है । मेरे साढ़े तीन सौ रुपये दिल्ली से गाजियाबाद आने वाली बस में रह गए । मैंने विस्मय से पूछा—कैसे ? उसने बताया मेरे पास इस झोले के अतिरिक्त एक छोटा झोला और था । डाक्टर से मिलने के बाद उनके नुस्खे के अनुसार मैंने डेढ़ सौ रुपये की दवाइयाँ तथा इन्जेक्शन लिये । छोटे झोले में मैंने बैंक की किताब और व्हेनेटी बैग जिसमें रुपये थे रख दिया । इस सफ़ेद झोले में दवाइयाँ और नुस्खा रख लिया । आइ० टी० ओ० पर बस पर चढ़ी तो भीड़ बढ़ती चली गई । मैं एक जनानी सीट पर झोले को अपने नीचे दबाकर बैठ गई और रास्ते भर यह सोचती रही कि पर उतर कर फल खरीद लूंगी और रिक्शे से घर आ जाऊंगी

बस में भीड़ बढ़ती ही गई और मेरे बगल में जो औरत बैठी थी वह लोनी के मोड़ पर उतर गई। उसके उतरते ही एक बूढ़े सज्जन ने मुझ से निवेदन किया कि उन्हें बैठ जाने दूँ। मुझे उनके सफ़ेद बालों पर दया आई और उन्हें बैठ जाने दिया।

किसी प्रकार रास्ता कटा और मैं जी० टी० रोड के घण्टाघर वाले चौराहे पर जल्दी से उतर गई। मेरे साथ ही कुछ और लोग भी उतरे और तुरन्त ही बस आगे चली गई। अब मैंने अपने हाथ पर ध्याल दिया तो मेरे हाथ में मात्र यह सफ़ेद झोला था। मैं लपाक से एक रिक्शे पर बैठी और बोली जल्दी करो, अभी-अभी जो बस इधर गई है उसे अगले स्टाप पर पकड़ना है। रिक्शे वाला बोला—अजी बस मैं नहीं पकड़ सकता, वह जाने कहाँ से कहाँ चली गई होगी। बेबस होकर मैंने अब न्यू कवि नगर चलने का आदेश दिया और उसने मुझे घर पहुँचा दिया।

इतना कह कर वह फिर रो पड़ी और बोली—जब बुरे दिन आते हैं तो हर बहाने नुकसान होता है। मेरे सब रुपये बस में रह गए।

उसके दुःख में मैं भी भागीदार बन कर सोचने लगा बेटे को इतनी बड़ी सजा देने के बाद भी ईश्वर को संतोष नहीं मिला, हजारों रुपये तो आपरेशन और प्रारम्भिक उपचार में ही खर्च हो गए, यह साढ़े तीन सौ की चपत और पड़ गई।

जब से दुर्घटना घटी थी पास-पड़ोस के लोगों से लेकर लड़के की फैक्ट्री से अनेक मित्र, सह-कर्मचारी और रिश्तेदारों के आने की भीड़ भी आती जाती रही। रात के समय कालोनी के पास के ही एक परिचित डाक्टर को बुला कर इन्जेक्शन लगवा दिये और दवाइयाँ दे दी गईं।

किसी तरह रात कटी तो सुबह से फिर लोगों का आना-जाना शुरू हो गया। लोग तो हमदर्दी दिखाने आते थे किन्तु हमारी परेशानी परोक्ष में बढ़ती जाती थी। न तो किसी का स्वागत कर पाते थे और न मना कर पाते थे। दो-पहर का डेढ़ बजा था। लड़के को मूँग की खिचड़ी परोसी ही गयी थी कि बाहर की कालबेल फिर बजी। मैं बाहर निकला तो आगन्तुक को पहचान नहीं पाया। मैंने पूछा क्या काम है ? तो वे बोले—श्रीमती मधु सक्सेना यहीं रहती हैं ? मैंने हाँ कहते हुए पूछा—आप उसके मायके के तो कोई सम्बन्धी नहीं ? वे मुस्कराये—नहीं, किन्तु उन्हें बुला दीजिये। मैंने बहू को बाहर भेजा तो वह भी पहली दृष्टि में उन्हें नहीं पहचान पायी। वह मात्र आप....आप कह कर रह गई और वे बोले—कल आप ही दिल्ली से गाजियाबाद वाली बस पर मेरे साथ....।

बहू एकदम से हाँ, हाँ, हाँ कह कर कुछ अधिक विस्मय में आ गई और उन्होंने अपने ब्रीफ़-केस से बहू का व्हेनेटी बैग निकाल कर पूछा—क्या यह आपका है ?

अब बहू ने तुरन्त आगे बढ़ कर उस बैग को पकड़ा और घर के अन्दर उन्हें लाती हुई बोली—आइये अन्दर चलिये, बैठिये।

बहू के पीछे-पीछे मैं भी अन्दर आया और उन्होंने दूसरा झोला निकाल कर

सामने रखा। बहू ने व्हेनेटी बैग खोला तो उसमें रुपये नहीं थे। उसने तुरंत झोला उठाया तो वह भी खाली था, वह घबड़ा कर बोली,—

'किन्तु इसमें तो कुछ रुपये थे !'

'कितने रुपये ?'

'साढ़े तीन सौ'

'तब तो यह आपका झोला और बैग नहीं है।'

'अरे, अरे कैसे कह रहे हैं आप ?'

'इसमें तो तीन सौ तिरपन रुपये अस्सी पैसे निकले, वे हँस कर बोले और बहू भी साथ ही हँस कर बोली हाँ वे पैसे कुछ पहले से बैग में पड़े थे।'

मैं और बहू इस बूढ़े आगन्तुक को और एक दूसरे को बार-बार देखे जा रहे थे।

कृतज्ञता से भरी हुई बहू ने बैग को उठा कर दूसरी ओर रखते हुए पूछा—'आप को घर का पता कैसे चला ?'

'आपकी पास बुक भी तो इन रुपयों के साथ थी, बस से उतरते समय मेरी सीट पर मेरे सिवा कोई नहीं था। मैंने तुरन्त आपके झोले को हाथ में लिया और समझ गया कि सिवा आप के वह अन्य किसी का नहीं हो सकता।'

बहू ने घर में रखे बिस्कुट उनके सामने रखते हुए खाने को कहा तो वे उठते हुए बोले,—'मैं कुछ नहीं खाऊँगा। मुझे जरा जल्दी है अब चलूँगा।'

'अजी यह कैसे हो सकता है ! आप पता नहीं कहाँ से रिक्शा करके आ रहे हैं, कम से कम रिक्शे के पैसे....'

'हाँ, हाँ वह मैं जरूर लूँगा।'

बहू ने तुरन्त दस रुपये का एक नोट उन्हें देते हुए पूछा—'आप गाजियाबाद में कहाँ रह रहे हैं ?'

'पास ही गाँधी नगर में।'

'आप अपना नाम और पता तो कम से कम बता....'

'मैं स्थायी रूप से आपको अपना ऋणी नहीं बनाना चाहता, मैं गाँधी नगर में रहता हूँ और संयोग से गाँधी से प्रेरित भी हूँ।' वे इतना कह कर बाहर चल दिये। उन्होंने लम्बे-लम्बे डग भरे और फाटक के बाहर हो गए।

मेरे बीमार लड़के ने खिचड़ी खा ली थी और अब हम दोनों इस आगंतुक की प्रशंसा करते हुए खाना खाते-खाते अपने भाग्य को सराह ही रहे थे कि बाहर से मेरा दस वर्षीय पौत्र आया और आधा किलो कश्मीरी सेब का पैकट अपनी मम्मी के हाथ मे रख कर बोला—वो जो अभी बूढ़े-बूढ़े से आये थे ना, वे मुझे यह पैकट देकर बाहर ही बाहर चले गए हैं।

इन सेबों का मूल्य दस रुपये से कुछ अधिक ही था, कम नहीं।

मैं इस देवता को पकड़ने के लिये बाहर भागा, किन्तु देवता तो जाने कहाँ जा चुका था। उसके बड़प्पन के आगे, दस रुपये देकर हम कुछ और छोटे हो गए थे। □

प्यार, पिता का

बैजनाथ दुबे मेरे सहकर्मी थे।

रिटायर होने के थोड़े दिन ही रह गए थे, अतः बीमारी की छुट्टी लेकर महीने भर से कार्यालय नहीं जा रहे थे। अन्तिम अवकाश ग्रहण करने में जब दस दिन रह गए तो उन्होंने ड्यूटी ज्वायन कर ली। उनके ड्यूटी ज्वायन करने के तीसरे दिन मुझे आफिस के काम से दिल्ली जाना पड़ा। मैंने उनसे जिक्र किया तो वे बोले—'अरे, आज तो मैं भी बाहर चल रहा हूँ। इटावा तक जाऊँगा। बिट्टो के लिए एक लड़का देखना है।'

मैं प्रसन्न हुआ और हम लोगों ने 'अपर इण्डिया एक्सप्रेस' से चलने का निश्चय किया।

रोज की तरह 'अपर इण्डिया एक्सप्रेस' उस दिन भी इलाहाबाद में लेट था—तीन घण्टे से भी अधिक। हम लोग इलाहाबाद से लगने वाली स्लीपर-बोगी में जाकर बैठ गए। दुबे जी उस दिन अपने घर में अपने लड़के से लड़ कर आये थे और क्रोध में उन्होंने उसे कुछ अपशब्द कहे थे। अपनी परिस्थितियोंवश अपने ही से वह क्षुब्ध थे। अतः प्रायः बहुत गम्भीर हो जाया करते थे। उस दिन वे कुछ अधिक गम्भीर थे। अधिक रात होने का आभास होते ही हम लोग अपनी-अपनी बर्थ पर लेट कर सो गए।

दो चार करवटों के बाद मेरी आँखें खुली तो देखा दुबेजी अपनी बर्थ पर नहीं हैं। सोचा शौचालय आदि गए होंगे, किन्तु उसके समय का अन्दाज बिगड़ गया। मैं बोगी से नीचे उतरा और प्लेटफार्म पर उन्हें ढूँढ़ने लगा। अचानक दूर पर दृष्टि गई तो यार्ड में भीड़ दिखाई दी। जिज्ञासावश मैं उधर बढ़ गया। भीड़ को चीर कर अन्दर झाँका तो एक आदमी की लाश पटरियों पर कटी पड़ी थी। कोई भी आदमी उस लाश को पहचान नहीं पा रहा था। मैं चेहरे को देखते ही चीख पड़ा—ये तो बैजनाथ दुबे हैं! यहाँ कैसे आ गए?

—क्या आप इन्हें जानते है?

—बिल्कुल साहब! मेरे दोस्त हैं।

—क्या करते हैं?

—हमारे साथ रेल के दफ्तर में काम करते हैं। इनका बिस्तरा वह देखिए, उस बोगी में लगा है। ये किस गाड़ी से कटे?

—राजधानी से !

राजधानी का नाम सुन कर मैं सोचने लगा—'राजधानी एक्सप्रेस' तो फिर राजधानी ही है। उसकी गति से तो पहले भी कितने लोग कट चुके हैं।

रेलवे-पुलिस के पाँच-सात सिपाही आ चुके थे। 'रेल सुरक्षा दल' के आदमियो ने एक घेरा डाल दिया था। दूर से रेलवे के अस्पताल का एक छोटा दस्ता फटा हुआ स्ट्रेचर ले कर आता दिखाई दिया और जल्द ही लाश के टुकड़े उस स्ट्रैचर पर रख दिए गए। लोगों ने मेरी ओर इशारा करके बताया—आप इस आदमी को जानते हैं।

मैं समझ गया अब मुझे अपनी यात्रा समाप्त कर इस मामले में काफी समय तक जूझना होगा। मैने फौरन जी० आर० पी० के दरोगा से समय माँग कर स्लीपर-बोगी से अपना तथा दुबे जी का बिस्तर गोल किया और लाश के साथ चल पड़ा। दुबे जी के बारे में मैंने रेलवे-अस्पताल में उनसे सम्बन्धी सूचनायें लिखा दीं। मुझे छुट्टी दे दी गई और दुबे जी के शव को मरणोत्तर परीक्षा के लिए शल्य-चिकित्सा-कक्ष में रख दिया गया।

मैं वहाँ से भाग कर दुबे जी के घर पहुँचा और जैसे ही यह दुःखद समाचार सुनाया, उनके घर में कोहराम मच गया। पत्नी मेरे सामने कटी लतर के समान धरती पर गिर पड़ी। उसने अपनी चूड़ियाँ तोड़ डालीं और उनका लड़का मुझे खींचता हुआ अस्पताल की ओर भागा। मैंने बिस्तर वहीं छोड़ दिया और हम दोनों रिक्शे से अस्पताल पहुँच गए। शव-परीक्षण की खाना-पूरी के बाद लाश हमें सौंप दी गई और चूँकि रेल-ऐम्बुलेन्स तीन दिन से खराब पड़ी थी, हम एक रिक्शा ट्राली में खून से सने दुबे जी के शरीर के टुकड़े लेकर घर आए। सुबह होते होते अन्त्येष्ठि भी हो गई, किन्तु प्रश्न था—जब वे बिटिया के विवाह के लिए कोई और अच्छे वर की तलाश में घर से निकले थे तब उन्होंने अपनी जान क्यों दी ?

× × × ×

दो दिन तक कार्यालय में दुबे जी की चर्चा जोरों पर रही। तीन-चार दिन बीतने पर बातचीत के विषय बदलने लगे, किन्तु उस दिन जब उनके अवकाश-ग्रहण का अन्तिम दिन आया तो उनकी चर्चा फिर चल पड़ी। दुबे मेरे प्रिय मित्रों में थे। मैं अपने स्थान पर बैठा-बैठा बहुत-सी बातें सोचने लगा।

उस दिन दुबे जी कार्यालय में जब मुझसे मिले थे, तो बहुत परेशान थे। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं और उनके स्वर में एक चिड़चिड़ापन था। मैंने पूछा था—भाई, बात क्या है, आज बहुत उखड़े-उखड़े हो, तो बोले थे—'आजादी के बाद जिन्दगी इतनी खराब हो जाएगी, यह तो सोचा ही न था। सुबह से चीनी की कन्ट्रोल की दुकान पर लाइन में लगा था, नम्बर आते-आते दस बज गए। किसी तरह गीली चीनी मिली तो घर पहुँचकर पसीना सुखाने के लिए पंखा खोला, पर बिजली गायब थी। बड़ी कोफ्त हुई। दफ्तर को देर हो रही थी, बिना सुस्ताये तौलिया उठा कर नहाने च-

पड़ा, किन्तु नल में पानी ही न था। दो-चार बूँदें टपका कर नल सीटी बजाने लगा। एक लोटे में घड़े से पानी भर कर उसी में तौलिया डुबा दिया और पूरा बदन अंगौछ कर शरीर पोंछ लिया। खाने की मेज पर बैठा तो होश आया कि देशी घी तो चार दिन पहले से ही समाप्त है। किसी प्रकार आठ-दस कौर खा कर यहाँ आफिस चला आया।'

मैं ध्यान से उनकी बात सुन रहा था मेरी आंखों में हमदर्दी देखते हुए आगे बोले—यहाँ आते ही बड़े साहब ने कमरे में बुला लिया। मैंने कमरे में प्रवेश ही किया था कि तड़ातड़ उन्होंने तीन-चार सवाल पूछ डाले। इसके पहले कि मैं अपने को सम्भाल कर उनके प्रश्नों का उचित उत्तर दूँ, उन्होंने अनुशासन की घूँट पिला कर कहा—आप तो अब शीघ्र ही बड़े बाबू बनने वाले हैं। जूनियर्स के सामने ऐसा ही एक्जाम्पल रखेंगे तो हाजिरी का रजिस्टर कब बन्द किया करेंगे? मन में तो आया कि कहूँ ३२ साल जब कोई उन्नति नहीं मिल सकी तो फिर अब रिटायरमेण्ट के छह महीने के अन्दर कौन सा अफसर बना देंगे, किन्तु चुप रह गया। अन्तिम समय में लड़ कर.......।'

मैंने तपाक से कहा,—'चुप क्यों रह गए! कस कर जवाब देना था।' तो बोले—'अरे यार, अन्तिम समय में लड़ने से फायदा? साला कहीं ग्रेचुटी में ही अड़ंगा लगा दे तो, और फिर यहाँ जिन्दगी में क्या एक बवाल है। मारो गोली थोड़ी नौकरी और बची है, काट लूँगा।'

मैंने पूछा—तुम्हारा लड़का नौकर हो गया?

बोले—'यही तो अभी सबसे बड़ी समस्या है। मैं रिटायर होने जा रहा हूँ और लड़का ओवरएज होने को है। साली कहीं नौकरी ही नहीं मिलती'। काश, हम कोई दूसरे वर्ण के ही होते तो कम से कम यह पाप तो कट जाता। अंग्रेजों के जमाने में एंग्लो-इण्डियन्स को स्पेशल ग्रेड दिया जाता था, क्योंकि वे बौद्धिक रूप से शासन द्वारा एडवान्स माने जाते थे, इस जमाने में जातिवाद की खाई बढ़ाते हुए उन्हें नौकरी में हर स्तर पर रियायत दी जाती है जो बौद्धिक रूप से पिछड़े माने जाते हैं। चार साल से लड़का बी० ए० पास होकर इधर-उधर घूम रहा है। कोई नौकरी नहीं मिली। मेरी योजना थी कि अवकाश ग्रहण करने के चार साल पहले मेरा सतीश अगर नौकर हो जाएगा तो बिट्टो के विवाह भर का पैसा जुटा लूँगा किन्तु यहाँ पैसा जोड़ना तो दूर, एक हजार रुपये नौकरी के फारम मंगाने में, डाक-टिकटों में और रेल-भाड़े में खर्च हो गए। कहीं भी नौकरी नहीं लगी। अभी थोड़े दिन पहले बीमे के रुपये मिले थे, धीरे-धीरे गृहस्थी के अतिरिक्त खर्चों में साफ हो गए। साली अक्ल काम नहीं करती।'

पूर्व इसके कि मैं कुछ अपने विचार रखूँ, दुबेजी बड़ी तेजी से चलते हुए बोले, 'चलूँ, आज का काम कुछ निपटा दूँ। शाम तक यदि साहब ने किसी बिल के बारे में पूछ लिया तो उन्हें अकारण ही मुझे कुछ उपदेश देने का अवसर फिर मिल जाएगा।'

कुछ दिनों बाद ज्ञात हुआ कि दुबेजी मेडिकल-लीव पर चले गए हैं। एक दिन बाहर चाय की दूकान पर अपने उधार खाते में चाय पीने वह वहाँ पहुँचे थे कि मैं पहुँच

गया। उन्होंने मेरे लिए भी चाय मंगाई। मैंने चाय की चुस्की भरते हुए पूछा, 'मामला क्या है? छुट्टी क्यों ले रखी है?

—यार, लड़के को नौकरी दिलाने के लिए दौड़-धूप कर रहा हूँ।

—बिट्टो का विवाह तय हुआ?

—हाँ-आँ, लड़का मिल गया है। बहुत शरीफ है। कचहरी में मुंशी है। आप तो जानते हो कचहरी के मुंशी की आमदनी, लेकिन शादी में कम-से-कम बीस हजार खर्च होना है। पाँच हजार तो नकद ही देना है। रिटायर होने पर पन्द्रह-बीस हजार की जुगाड़ लग जाएगी। लेकिन सतीश अगर नौकर न हुआ तो....तो फिर कंगाल ही रह जाऊँगा।'

मैंने करुणा भरी दृष्टि से सिर हिलाया और वह मेरे कान के पास झुक कर बोले, 'तुम्हें तो पता है, जीवन भर प्राविडेण्ट-फण्ड से रुपये लेता रहा। अब उसमें बचा ही क्या है? तुमसे क्या छुपाऊँ, मेडिकल की छुट्टी लेकर एक बिसाते की दूकान में मुनीमगीरी का कुछ काम कर रहा हूँ। डेढ़ सौ रुपए अभी तय हुए हैं। काम ठीक चला तो शायद दो सौ हो जाएँ। रिटायरमेण्ट के बाद इस नौकरी को ही कस कर पकड़ूँगा।'

हमारी उनकी बात हो ही रही थी कि हमारे सेक्शन का चपरासी भी उसी दूकान पर आ गया। उसने दुबेजी को देखते ही पूछा—पण्डितजी! का बात है, आज-कल दफ्तर नहीं आय रहे है? तबियत तो ठीक है?

—तबियत तो ठीक है, मगर हालत खराब है।

—काहे?

—काहे कि लड़का नौकर हुआ नहीं, बिटिया शादी के लिए तैयार है। पैसे हैं नहीं, और कोई तरकीब समझ में आती नहीं कि लड़का नौकर हो जाए।

—हम तो आपन बरे एक तरकीब सोचा है।

—क्या?

—नौकरी करते हुए मर जाव। सुना है नौकरी करते हुए मर जाने वालों के लड़कों को बदले की नौकरी मिल जाती है।

हम लोग उसकी बात सुन कर स्तब्ध रह गए और वह जिसकी चाय लेने आया था, उसके गिलास में दूकानदार से चाय लेकर चल दिया।

दुबेजी ने चपरासी की बात सुनने के उपरान्त भी सन्तोष के साथ चाय पी थी। दुकान के बाहर आते हुए उन्होंने कहा था, छुट्टियाँ तो अब समाप्त हो हो रही हैं। जल्दी ही आफिस ज्वायन करूँगा।'

और उस दिन उन्होंने आफिस ज्वायन किया। उनकी मृत्यु अथवा आत्महत्या का कारण मेरे अन्दर बहुत स्पष्ट नहीं था। मैं अपनी कुर्सी पर बैठा दुबेजी के बारे में

ही सोच रहा था कि अचानक सतीश कार्यालय में आया और मेरे पास आ कर खड़ा हो गया। उसने एक लिफाफा निकाल कर मुझे दिया और बोला, 'उस दिन बाबूजी का जो बिस्तरा आप उठा कर लाए थे, उसे आज झाड़ कर जब रखा जाने लगा, तब उसमें आपके नाम लिखा गया बाबूजी का यह पत्र मिला है—

प्रिय बन्धु,

मेरा अन्तिम नमस्कार स्वीकार करो। उस दिन मोहनसिंह चपरासी ने तो अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति में ही कहा था कि वह लड़के की नौकरी करते हुए मर जाएगा, किन्तु मैं अपने भावी जीवन में अन्धकार देखते हुए अपने परिवार के भावी सुख के लिए स्वयं आत्महत्या के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं देखता।

ज्ञात हो, मैंने जिस लड़के को अपनी बेटी बिट्टो के विवाह के लिए तय किया था, उसको एक मालबाबू ने नकदी की राशि बढ़ा कर अपनी कन्या के लिए तोड़ लिया है, और मैं जिस दुकान में मुनीमगीरी करने लगा था, वहाँ से मुझे मुक्त कर दिया गया है, क्योंकि उन्हें एक ऐसा चतुर मुनीम मिल गया है जो अपने हिसाब-किताब के तरीके से उन्हें कई हजार रुपये के आयकर से मुक्ति दिला सकता है। मैं आज तुम्हारी यात्रा को अपनी जीवन-यात्रा के साथ खण्डित कर रहा हूँ, इसलिए क्षमा चाहता हूँ, किन्तु चूँकि तुम भी हमारे परिवेश के हमारी ही तरह कुछ बच्चों के पिता हो, इसलिए शायद हमारे दर्द को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हो। मेरे प्राणान्त से प्रिय सतीश की नौकरी लगने की परिस्थितियाँ अब अधिक अनुकूल बन जाएँगी। मित्र के नाते सहायक होकर सतीश को नौकरी दिलवा देना। मुझे विश्वास है उसकी नौकरी लग गई तो बिट्टो का विवाह भी हो जाएगा।

—तुम्हारा
बैजनाथ दुबे

पत्र को पढ़ कर मैं हतप्रभ हो गया था और स्वयं पिता हो कर भी पिता के जिस प्यार को नहीं जान पाया था, उसे पत्र के माध्यम से जान कर अपनी आंखों में आसू भर लाया था। मेरी समझ में नही आ रहा था कि मैं अपने मित्र के लिए रोऊँ अथवा इस व्यवस्था के प्रति, जिसमें से बैजनाथ की तरह हजार लोग गुजर रहे हैं। सतीश की आखों में आंसू थे और वह अभी मेरे ही पास बैठा था। □

द्वन्द्व, वर्जित प्यार का

प्यार वह शब्द है जो अपने-आप में ही बहुत प्यारा है। इसकी परिधि अलग-अलग आकाश पर अलग-अलग रंग बिखेरती है। रंगों का अपना प्रभाव होता है, किन्तु इन रंगों की उत्पत्ति का कारण विभिन्न सम्बन्धों के आकाशों का परिवेश होता है। इसकी रंगीनी, विराट् संस्कारों से सम्पृक्त सहृदय व्यक्ति ही समझ सकते हैं।

प्यार होता है पति-पत्नी में, प्यार होता है प्रेमी-प्रेमिका में, प्यार होता है भाई-बहन में, प्यार होता है पिता और पुत्री में, प्यार होता है बेटे और मां में, प्यार होता है मित्रों में, प्यार होता है सहेलियों में और कभी-कभी ऐसा प्यार भी होता है जिसे सामान्य नही कहा जा सकता किन्तु वह भी एक प्यार हो सकता है, होता भी है कभी-कभी।

विधुर जीवन के दो दशक पार करने के बाद, जीवन के सातवें दशक में प्रवेश करते-करते भावना के घोड़े विवेक की लगाम से जैसे भी कसे जा सकते हैं उसने उन्हे वैसे ही कस कर रखा था, फिर भी एक एकान्त में उसने उसकी अत्यधिक स्नेही सेवाओं से विमोहित होकर उससे सहसा कहा—वह उसका छोटा-सा प्यार चाहता है, उसके कपोलों का चुम्बन। वह उसके इस अप्रत्याशी प्रस्ताव पर सिहर उठी। उसके कपोलों पर एक लालिमा दौड़ गई। वह कुछ मुस्कराई और उससे कुछ दूर हटती हुई बोली—'आप भी क्या....'वह आगे कुछ भी न बोल सकी और उसने उसके चेहरे को पढ़ते हुये कहा,—'मेरे प्यार का कोई दूसरा अर्थ मत लेना, तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो, अपने सौन्दर्य से ही नहीं, व्यवहार से भी। मैं तुम्हारे पिता के बराबर हूँ। मुझे केवल तुम्हारी एक मिट्ठी चाहिये।'

वह थोड़ा-सा उसके पास आकर खड़ी हो गई। उसने अपनी आँखें बन्द कर ली और उसने उसके कंधों पर दोनों हाथ रख कर उसकी दो-चुम्मियाँ लीं। एक इस गाल पर, दूसरी दूसरे गाल पर। उसने अपने आँचल से अपने गाल के चुम्बन पोछ दिये। वह उसके पास से कुछ दूर हटी और उसने एक उड़ती दृष्टि से उसे फिर देखा, किन्तु वह एक नई तरंग के अतिरेक में मुस्कुराता हुआ अपने कमरे में चला गया। सचमुच उसे उस प्यार में बहुत सुख मिला, किन्तु वह बार-बार अपने से पूछ रहा था—उसके इस प्यार में क्या कोई अवांछित चेष्टा निहित थी ?

उसने उसका चुम्बन बहुत ही सौम्य रूप से उसकी नितान्त वर्जनाविहीन स्थिति में लिया था। कहीं कोई जोर और जबर्दस्ती नहीं थी, फिर भी वह बारम्बार अपने को आश्वस्त कर रहा था कि उसके प्यार का रंग लाल ही है, काला तो नहीं।

दो-चार महीने बीतते हैं। उसके स्नेह और उसके आदर के आचार-व्यवहार अपरिवर्तित हैं। उसका व्यवहार ही ऐसा है कि उसे बात-बात में उसकी प्रशंसा करनी होती है। एक दिन वह उसके सामने पंजाबी छोले की एक प्लेट लेकर आई और बोली—ज़रा इसे खाइये कैसे बने हैं? उसने हाथ में प्लेट लेकर तुरन्त एक चम्मच छोले अपने मुख में रखे और बोला—वाह, बहुत बढ़िया।

—सच बताइये, मैंने तो आज पहली बार....

—अरी! पहली बार में ही बहुत बढ़िया बने हैं। जी चाहता है मैं तुम्हें फिर प्यार कर लूँ।

वह उसकी यह बात सुनकर एक दम चुप खड़ी रह जाती है। वह उसकी ओर थोड़ा-सा बढ़कर पूछता है—क्या मैं एक मिट्ठी ले लूँ? उसके चेहरे पर एक लालिमा दौड़ जाती है, वह मुस्कुराती भी है किन्तु पास ही रखी एक साबुन की डिबिया उठा कर कमरे के बाहर चली जाती है और कमरे के बाहर होते ही कहती है—मैं जरा नहाने जा रही हूँ।

उसका प्रस्ताव परोक्ष में अस्वीकृत होता है। उसका मन उसे कचोटता है। उसने उससे वह बात क्यों कही? उसने अपनी शालीनता भी खोई और कुछ पाया भी नहीं। वह उस छोटे से सुख की तलाश अब क्यों करता है जिसका हकदार वह वर्तमान परिस्थिति में नहीं है? यदि वह उस सुख का हकदार नहीं तो उसके अन्दर ऐसी भावनाएँ क्यों उमड़ती हैं? क्या सचमुच उसने अपनी शालीनता खो दी? किन्तु, किन्तु किसी को प्यार करने की ललक भी क्या शालीनता खोना है? क्या उसके चुम्बन में शालीनता निहित नहीं थी? क्या उसने उसके कपोलों का चुम्बन उसी प्रकार लिया था, जैसा कोई प्रेमी या पति अपने प्रेमावेश में अपनी प्रेमिका या पत्नी का लेता है? ऐसा तो कुछ नहीं था। उसने उससे मात्र एक वह प्यार माँगा था जिसे वह यदि चाहे तो शालीनता से निभा दे। वह अपनी सीमा जानता है। और फिर उसके अपने शरीर में वह क्षमता भी शेष कहाँ जिसे वासना कहा जाता है। उसकी वे क्षमताएँ क्षीण हो गई हैं अतः यह प्यार समाज में वात्सल्यता का प्यार माना जाना चाहिये, इस प्यार को एक निर्मल प्यार माना जाना चाहिए। किन्तु....किन्तु वह बहुत देर तक एक विचित्र मनःस्थिति में रहा।

उस दिन उसे एक पिता की प्रति छाया में उसका प्यार मिला था, आज उसके मनमें उसके प्यार के प्रति यदि कोई शंका जाग गई है तो क्या इस शंका को उसके मन का कलुष नहीं कहा जा सकता! इस आयु में आकर भी उसके मन में स्वाभाविक प्यार करने की जो हूक उठती है उस पर उसका क्या वश है? यह प्रकृति की यदि स्वाभाविक

प्रक्रिया है तो फिर इस पर किसी पाप की छाया क्यों मँडरा रही है ? पाप ! आखिर प्यार और पाप की व्याख्या क्या है ?

उसे अपने अन्दर उठते हुये प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं मिलता । उन क्षणों से बिंधा हुआ वह दिन बीत जाता है और शनैः-शनैः वह सामान्य हो जाता है । कुछ महीने फिर बीतते हैं और एक दिन फिर वह स्थिति आती है कि वह बहुत कुछ सोचने-समझने के बाद भी उस गृहस्थ नारी की सेवाओं और व्यवहार से अभिभूत होकर उसके सहज सौम्य मुख को ताकने लगता है और कह देता है—'उस दिन तुम्हारे मन में जाने क्या भावना मेरे प्रति बन गई कि तुम मेरी बात को टाल गई ।'—उसके बोलते ही वह कुछ ध्यान से उसको सुनने लगी और उसने उसी वाक्य में कह दिया—'क्या तुम मुझे आज अपना प्यार दोगी, मात्र एक मिट्ठी ?'

वह अपने बदन को जो पहले ही पूर्ण मर्यादा से ढका था, कुछ अधिक ढकते हुये इधर-उधर देखने लगती है और बहुत शालीनता से मुस्कराती है । वह प्रस्ताव का कोई उत्तर नहीं देती । उसके मौन पर वह पूछता है—क्या तुम बुरा मान गई ? उसे इस प्रश्न का भी कोई उत्तर नहीं मिलता और घर के दूसरे भाग में खेल रहे आठ साल के अपने बच्चे को आवाज देकर वह बुलाती है और उसके आते ही वह शतरंज की बिसात बिछा कर उससे कहती है—आओ आज मैं तुम्हें मात दूँ । नैशनल खेलोगे या इण्टर नैशनल ?

उन दोनों का खेल प्रायः होता रहता था, अतः उस बच्चे के आते ही शतरंज के मोहरे अपने-अपने घरों पर बैठने लगे । वहाँ का एकान्त समाप्त हो जाता है और शतरंज की पूरी बाजी बिछने के पहले ही वह स्वयं मात खाकर रह जाता है । वह अपने कमरे में आकर अपनी अल्मारी में सजी हुई किताबों को नई तरतीब से सजाने लगता है । उसके हाथ अपना काम करते रहते हैं और उसका मस्तिष्क अपना । वह सोच रहा है—क्या आज फिर मैंने कोई गल्ती की ? यह मात खाने की भावना मुझमें क्यों आई ? कहीं कोई चोर है जरूर । चोर ! कैसा चोर । यह तो एक सहज मानवीय भावना है जिसकी लहर आने पर किसी को प्यार करने का मन होता ही है । इस भावना की सम्पूर्ति यदि सौम्य रूप से हो सकती है तो क्यों न हो । मैं इसकी पूर्ति कहाँ करूँ ? कहीं हो अथवा न हो, किन्तु अब वहाँ नहीं । क्यों नहीं वहाँ ? मैं उससे आखिर वह क्या चाहता हूँ जो प्रदत्त कर वह यह समझती है कि वह कुछ खो रही है । खोने की बात मात्र स्थिति को भिन्न रूप से लेने में है । उसे मेरे इस परिताप को संतोष प्रदान करना चाहिये । मात्र इस छोटे से प्यार को पाने के लिये मुझे अधिक विपरीत स्थिति में भटक जाने देना—क्या यह उसके सोचने का विषय नहीं है ?

किताबों को उलटते-पुलटते उसके हाथों में आती है एक पुस्तक 'मानव प्रवृत्ति, सीमा-अनुसीमा' । वह कुर्सी पर बैठ कर उसके पृष्ठ पलटने लगता है । दो पृष्ठ पढ़ता है तो दस-बीस पृष्ठ यूँ ही पलट देता है । उसकी चिन्तन धारा कुछ इसी क्रम से

प्रवाहित है। उसके जीवन के सैकड़ों दिन और मास ऐसे ही बिना किसी की दृष्टि में आए हुये बीते हैं। अन्तिम पृष्ठों से कुछ पूर्व पहुँच कर वह उस नारी पर आक्रोष अनुभव करने लगता है जो किसी भी प्रकार से उसके प्रति प्रतिबद्ध नहीं है। उसकी आँखों के सामने उसकी, उस नारी की भद्रता, शालीनता और मुस्कुराहट उभर कर आ जाती है। वह अनायास कुछ मुस्कुराता है और बड़बड़ा उठता है—कितनी सुन्दरता के साथ वह अपने संकट (तथाकथित) का निवारण करती है! किन्तु ...किन्तु वह उसके प्यार की यह सीमा यदि निभा देती तो क्या यह उसका बड़प्पन न होता? शायद होता या शायद नहीं भी।

वह अपने हाथ में ली हुई किताब को अल्मारी में रख देता है और बड़ी देर तक एक ऊहापोह की स्थिति में उलझा रहता है।

उस दिन उसे अपने अन्दर उठते हुए प्रश्नों के उत्तर नहीं मिले, किन्तु दो-चार दिन बाद उस दिन की ही घटना से वह फिर बिंध गया। आखिर वह बात क्या है कि एक ओर वह इस प्यार को सहज प्यार नहीं मान रही, दूसरी ओर समाज से भी ऐसे प्यार की खुली छूट नहीं। शायद समाज को भय है, जिस प्यार को वह वात्सल्य का रूप देना चाहता है वह किसी दिन भावातिरेक में टूट कर मात्र एक पुरुष की वासना न बन जाए। और फिर एक बात और भी है कि नारी का पति इस प्यार को किस रूप में लेता है।

सम्पूर्ण स्थितियों की समीक्षा वह बहुत देर तक करता रहा। इस समीक्षा के क्षणों में भी उसे एक हुड़क उठी, कि वह उसका एक छोटा-सा प्यार फिर पाता। वह उठा और आनन-फानन उसके कमरे में पहुँच कर उसने उस पर ऐसी दृष्टि डाली कि वह समझ जाय कि वह उससे उस छोटे-से प्यार की लालसा रख कर आया है। किन्तु उस नारी ने एक नकारात्मक मुद्रा बनाई और वह चुप खड़ा रह गया। कुछ देर खड़े रहने के बाद वह अपने कमरे में लौट आया।

नारी की यह नकारात्मक स्थिति यदि किसी अन्य नारी से उसे झेलनी पड़ती तो सिवा आक्रोश में झुलस जाने के वह कुछ नहीं कर सकता था किन्तु वह उस नारी की नकारात्मकता की भी अन्दर-अन्दर प्रशंसा करने लगता है, क्योंकि वह और कोई नहीं, उसकी पुत्र-वधू है, उसके प्यारे और जवान बेटे की पत्नी।

बेटा, पिता के इस उपक्रम को सहज वात्सल्यमय प्रेम न मान कर यदि कुछ दूसरा ही अर्थ लगाने लगे तो फिर!

तो फिर?

तो फिर?

तो फिर?

तो फिर शरीर की इस हुड़क को मिटाने के लिये क्या उसे बाजार में चला जाना चाहिये? आज तक नहीं गया। क्यों नहीं गया, बीते वर्षों में तो वह आज से

कम ही बूढ़ा था। भावना और कर्त्तव्य के द्वन्द्व के बीच वह हमेशा कर्त्तव्य को ही प्रश्रय देता रहा, किन्तु सम्पूर्ण दायित्व निभा देने के बाद आज इस आयु में भावना यदि फिर प्रबल हो रही है तो संभवतः यह सहज मानवीय शरीर की प्रक्रिया है जिसे शायद बेदर्दी से कुचल देना चाहिये। किन्तु, किन्तु यदि इस भावना की सम्पूर्ति बिना किसी आर्थिक कठिनाई के पूरी की जा सकती है तो उसको कुचला क्यों जाय ?....शायद कुचला जाना ही आवश्यक है, बाजार में जाने पर भावनाएँ भी बाजारू हो जायेंगी। शायद वे अपनी पूर्व निर्धारित सीमा में न रह जायें,....और फिर जब बाजार में पहुँच गए तो फिर सीमित सीमा में रह जाने की आवश्यकता भी क्या है। वहाँ जाने मात्र से भावना भोग में बदल जायेगी और भोग की कीमत पूरी ही चुकानी पड़ती है, भले ही उसको आप पूरा भोग पाएँ अथवा नहीं। वह उस भोग की पूरी कीमत दे सकता है, कोई अड़चन नहीं है। बाजार में जाकर वह नारी के शरीर को वहाँ तक क्यों न भोगे, केलि-क्रीड़ा करे जहाँ तक कर सकता है। ...किन्तु यदि ऐसा ही था तो गत २२ वर्षों से वह एक नपुंसक की जिन्दगी क्यों जीता रहा ?....शायद बहुत से कारण थे....कारण थे....कारण थे। कारण थे तो थे, किन्तु अब !

अब उसे यह भय है जो वह एक मर्यादित जीवन जी आया है वह दूषित न हो जाय। उसकी आर्थिक सम्पन्नता जो हर कुछ महीनों बाद बहू-बेटों और पोतों के भविष्य के लिये किसी जमा योजना में लगा दी जाती है, किसी नई बीमारी को न खरीदने लग जाय।....किन्तु ऐसी स्थिति में किया ही क्या जा सकता है। शरीर के अंत होने का दिन यूँ भी निकट ही आता जा रहा है। बीमारी लग भी जाय तो क्या है। उसकी भावनाओं की जब अन्य किसी को कोई चिन्ता नहीं तो वह ही इतना सोच-सोच कर पागल क्यों हो रहा है। क्या वह उस छोटे से प्यार को पाने का अधिकारी नहीं। क्यों नहीं ? समाज ने इस प्यार को वर्जित कहा है, शायद इसलिये कि विवेक की वल्गाएँ किसी क्षण ढीली हो सकती हैं। और.... □

कहानी, अमनअली की

अमन अली शान्तिप्रिय आदमी थे। सरकारी नौकरी में ऐसे पदों पर रहे जहाँ बैठकर लोगों ने हवेलियाँ बनवा लीं, किन्तु अमन अली अपने सिद्धान्तों के पीछे अपने कच्चे मकान को पक्का भी नहीं करवा सके।

शादी होने के साल भर बाद ही जब उनकी पहली संतान हुई तो वे न जाने क्यों अपने को किन्हीं अर्थों में अपराधी समझने लगे। उन्होंने अन्दर ही अन्दर कसम खाई कि अब कम से कम पाँच साल तक कोई संतान नहीं होने देंगे। बेगम को उनकी यह बात जब मालूम हुई तो बोलीं—'आप भी अजीब आदमी हैं, अरे पीरें तो मैं सहती हूँ, आप क्यों परेशान होते हैं ? घर के बच्चों से घर की ही रौनक नहीं बढ़ती, हमारी कौम भी तो बढ़ती है।'

'कौम को बढ़ाने की तुम्हें कहाँ से फिक्र लग गई ?'

'क्यों कौम की वजह से ही तो हम लोग अभी भी यहाँ हिन्दुस्तान में जिन्दा बैठे हैं, नहीं तो इन हिन्दुओं ने तो....'

'....हम सबको मार डाला होता।'

'और क्या !'

'तुम निहायत बेवकूफ औरत हो, अरे हिन्दुओं की अगर बुनियादी जहनियत फिरकापरस्त होती तो सन् सैंतालिस में ही वे भी वैसी ही सफाई मुसलमानों की यहाँ हिन्दुस्तान में कर देते जैसी मुसलमानों ने पाकिस्मान में हिन्दुओं की की।'

'तो क्या वे बाज आए, वह तो कहिये कामयाब नहीं हो सके।'

'क्यों नहीं, हम लोग तो लोहे के बने थे। उन्होंने लकड़ी की तलवारें मारीं और वे टूट गईं। किसने तुम्हारा दिमाग खराब कर रखा है ?'

'.....................'

'चुप क्यों हो, बोलो ? यह तुम्हारे बाप और भाई कहते थे नाऽऽ। बड़े हमदर्द थे मुसलमानों के, तो हमें हिन्दू कसाइयों के हाथ में छोड़कर खुद पाकिस्तान क्यों चले गए ? पाकिस्तान भाग जाने वाले मुसलमान बुजदिल थे और थे कौम के दुश्मन। हमको बचाने वाले थे मौलाना मदनी, मौलाना आजाद, बादशाह खाँ, महात्मा गाँधी। तुमने महात्मा गाँधी जी का नाम सुना है ?'

सुना है लेकिन वो अगर सही आदमी होते तो जिन्ना साहब पाकिस्तान क्यों मांगते ?

जिन्ना साहब ने पाकिस्तान मुसलमानों के लिए नहीं अपने लिए, अपने नाम के लिए और एक नये मुल्क की तवारीख में पहला आदमी बनने के लिये लिया। मुसलमानों की भलाई अगर पाकिस्तान बन जाने से ही होती थी, तो पाकिस्तान से बांग्ला देश क्यों अलग हुआ ?'

बेगम साहबा अपने मियाँ की इस बात को सुनकर उस समय वहाँ से टरक गयीं, किन्तु उनके घर में किसी न किसी राजनीतिक पक्ष को लेकर प्रायः मानसिक असंतोष जागता रहता था। मियाँ-बीबी की इन तकरारों के बावजूद आठ साल के अन्दर उनके तीन बच्चे हो गये, एक लड़की और दो लड़के।

बच्चे बड़े होते गए। सरकारी वेतन भी बढ़े किन्तु बाजार, गदहे की नाक के आगे बँधी मूली के समान आगे ही आगे रहा। मँहगाई, वेतनों की बढ़ोत्तरी के अनुपात में ऊपर ही ऊपर चढ़ती गई।

बच्चे जब जवान हुए तो उन्होंने अम्मीजान को प्रायः इस बात पर अब्बा से लड़ते सुना कि वे जब ऊपर की आमदनी कर सकते हैं तो क्यों नहीं करते। अमन अली बराबर यह समझाने की कोशिश करते थे कि गलत काम गलत है किन्तु एक दिन उनकी बहस बड़े लड़के से हो गई—

'मैं स्कूटर लूँगा।'

'पागल हो गए हो ? कहाँ से लोगे।'

'आखिर बाबू रामप्रसाद का लड़का महेश कहाँ से स्कूटर चढ़ रहा है ? क्या रामप्रसाद जी आप से सीनियर हैं ?'

'अरे भाई उनकी बात छोड़ो। वो तो अपने बाप का काम भी बिना घूस खाए नहीं करते। लड़का मुँह ताकने लगा और वे धीरे से बोले—'हमारी जो आमदनी है उसी से हमें तुम्हारी बहन की शादी भी करनी है, फिर खाने-पीने में ही अच्छी खासी रकम खर्च हो जाती है।'

'खाने-पीने में कौन देशी घी आप पिला रहे हैं। जब देखिये तीर छाप और खजूर छाप.......'

'चुप रहो बत्तमीज।' अमन अली ने डाँटा और उधर से आ गईं उनकी बेगम, —'मैं सब सुन रही हूँ। क्या गलत कह रहा है बेचारा ?'

'तुम्हारी वजह से ही वह इतना शेर हो गया है। लेकिन तुम लोगों की वजह से मैं बेईमान नहीं बन सकता। इस लड़के को अगर हमारे घर की रोटी-दाल नहीं पसन्द तो घर क्यों नहीं छोड़ देता ?'

'हाय अल्ला ! आप कैसी बात कह रहे हैं ? जवान बेटा है, बुरा लग गया तो हाथ से बे-हाथ हो जायगा।'

'आज चला जाने दो इसे मैं ऐसे लड़के को बर्दाश्त नहीं कर सकता।'

'ठीक है'—बेटा बोला,—'अम्मीजान अब इस घर में तभी आऊँगा जब अपनी कमाई करने लगूँगा।'

'अरे बेटा! अब्बा की बात का इतना बुरा नहीं माना जाता। कहाँ जाओगे?'

'कहीं भी जाऊँगा, आपको क्या करना है।'

'नहीं बेटा नहीं।'

'क्या नहीं-नहीं लगा रखी है!' अमन अली बोले, 'चार दिन बाद जब भूखे मरने लगेंगे तो फिर यहीं आयेंगे। जाने दो ना।'

इतना सुनते ही वह घर के बाहर चला गया। अम्मीजान दरवाजे तक पहुँचकर रुक गईं। उनका दुपट्टा आँसुओं से भीग गया, लेकिन अमन अली एक कदम भी उधर नहीं बढ़े।

एक सप्ताह बीता, किन्तु घर का गया लड़का लौटकर घर नहीं आया। अब अमन अली की ममता फड़फड़ाई। पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि वह अपनी बड़ी खाला के घर में रह रहा है। अमन अली चुपचाप घर चले आये, किन्तु अम्मीजान अपने बेटे को मनाने वहाँ पहुँच गयीं—'तुम यहाँ छुपकर बैठे हो? चलो बेटा! घर चलो ना। अब्बा अब कुछ नहीं कहेंगे।'

'नहीं मैं नहीं जाऊँगा। मैं अब्बा को दिखा दूँगा कि मैं भी कमाई कर सकता हूँ।'

'यहाँ क्या कमाई कर रहे हो।'

'मैं वसीम भाई के जरिये मोटर-मिस्त्री का काम सीख रहा हूँ।'

'मोटर-मिस्त्री में क्या रखा है, अरे ठाट से बी० ए०, एम० ए० करो।'

'बी० ए०, एम० ए० करने वालों के जमाने लद गये और फिर अब्बा जान ने भी तो शायद बी० ए० करके ही नौकरी शुरू की थी; क्या कमा रहे हैं?'

'और तुम क्या कमा रहे हो?'

'अरे मैंने दस रुपये रोज कमाने शुरू कर दिये हैं। आगे और मिलेंगे।'

'कौन सा काम जान गए जो दस रुपये रोज मिलने लगे?'

'मोटर-गाड़ी को तेल पिलाता हूँ।'

'गाड़ी को तेल पिलाते हो। तो तेल पिलाने से क्या तुम अपनी स्कूटर खरीद लोगे, जिसके लिये झगड़ा करके यहाँ भाग आये।'

'मिस्त्री बन कर मैं मोटर खरीद लूँगा, किन्तु बाबू बनकर मोपेड खरीदना भी मुश्किल है।'

'मत बनो बाबू, अफसरी के इम्तहानों में बैठो।'

'कितने लोग अफसर बन सकते हैं? मुझे अफसर बनने की उम्मीद नहीं है।'

'न सही घर तो चलो

'..........' उसने नकारात्मक सिर हिलाया।

'तो तुम घर नहीं चलोगे ?'

'नहीं।'

अम्मीजान उसकी 'नहीं' की दृढ़ता को सुनकर घर लौट आई और मियाँ से बोली,—'आप ही जाइयेगा तो वह आयेगा, वहाँ वह मोटर-मिस्त्री बन रहा है।'

'मुझे मालूम है, लेकिन मैं नहीं जाऊँगा उसे बुलाने।'

'क्यों ?'

'बनने दो उसे जो बनना चाहता है।'

बेगम साहबा विवश होकर चुप रह गईं। बड़े लड़के के विद्रोह के कारण अमन अली अन्दर से जरा सतर्क हो गए। छोटे लड़के के लिए बिना किसी के कहे वे कुछ अच्छे कपड़े बनवाने लगे। लड़की की शादी में भी उन्होंने कुछ जल्दी की; हाई स्कूल पास करते ही उसे गाँव के एक मास्टर से ब्याह दिया।

× × ×

दिन और साल बीतते गए। अब छोटा लड़का भी जवान हुआ। उसने बी० ए० पास किया था, किन्तु बिना नौकरी के शादी नहीं की जा सकती थी। अमनअली का रिटायरमेण्ट निकट आ गया किन्तु छोटे लड़के की नौकरी नहीं लगी। विवश होकर उन्होंने उसे एक दूकान करवाने का निर्णय लिया। दूकान की तलाश में निकले तो कहीं दूकान ही नहीं मिली। बाजार से हट कर एक नई कालोनी में कुछ नई दूकानों को बना देखा। नगरपालिका के अधिकारियों से बात की तो ज्ञात हुआ दो-सौ रुपये महीना किराया और चार हजार पगड़ी।

'यह पगड़ी क्या बला है ?'

'आज के जमाने में आप पगड़ी नहीं जानते ! तो दूकान क्या करेंगे, खाक ?'

'भई, साफ-साफ बात करो।'

'बात तो साफ है, खुलासा यह कि आपकी इस चार हजार की पगड़ी में दो हजार नगरपालिका के पास एडवान्स किराया जमा रहेगा और दो हजार........'

'........और दो हजार ?'

'दो हजार अधीक्षक अभियन्ता तथा उनके बाबुओं में बँटेगा।'

'यानी घूस !'

'जी नहीं, यह सेवा-शुल्क है, हम लोग जो जनता की सेवा करते हैं उसका शुल्क कौन देगा, जनता ही तो........।'

'तो क्या आप हमें चार हजार की रसीद देंगे ?'

'आप किस दुनियाँ के आदमी हैं, चलिये यहाँ से, हमारे पास कोई दूकान खाली नहीं है।'

'आप कैसी बात कर रहे हैं, मैं ऐरा-गैरा नहीं हूँ, मैं भी सरकारी कर्मचारी हूँ।'

'यही तो मुसीबत है, आप सरकारी कर्मचारी की जगह अगर व्यापारी होते तो हमारी बात समझने में देर न लगती। आजकल चार हजार होते क्या हैं! यह तो सरकारी दुकानें हैं किसी की प्रायव्हेट होती तो पन्द्रह हजार एडवान्स पगड़ी देकर दूकान एलाट करानी होती। यहाँ तो दो हजार आपका एडवान्स केराया माना जा रहा है, किन्तु वहाँ पन्द्रह के पन्द्रह बयाने में ही चले जाते : समझदार हों तो बहस मत कीजिये। चार हजार रुपये लेकर आइये और....'

'लेकिन....'अमनअली मात्र इतना ही बोल पाए और वहाँ से लौट पड़े। घर आकर लड़के और बीवी को सारी बात बताकर बोले,—'अपने हाथों तो मैं इतनी बड़ी घूँस नहीं दे सकता।'

'ठीक है, 'आप कुछ मत कीजिये'—बेगम ने कहा,—'कायदे से रिटायर हो लीजिये और जो रुपये हमें दे सकें। हमें दीजिये, हम इन्तजाम कर लेंगे।'

छः महीने बाद ही अमन अली रिटायर हुये। आफिस में लोगों ने विदाई के अवसर पर उनके मानवीय पक्ष की प्रशंसा की और एक ने कहा—अमन अली साहब ने बहुत दिन इन्सानों की सेवा की, अब इस बुढ़ापे में मै उम्मीद करता हूँ कि वे जियारत पर जाने का प्रोग्राम बनाएँगे।

अमनअली ने अपनी विदाई पर बोलने वालों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की और सभा समाप्त होते ही वे उन मौलाना के पास पहुँचे जिन्होंने उन्हें जियारत पर जाने की सलाह दी थी। मौलाना समझे कि उन्हें उनकी बात बहुत पसंद आई, छूटते ही बोले,—'अमनभाई, तो आप जियारत पर कब जा रहे हैं ?'

'यही बात करने तो आपके पास आया हूँ, मैं पूछना चाहता हूँ कि जियारत मे क्या रखा है ?'

'अरे यह भी कोई पूछने की बात है, जियारत तो खुदा की इबादत है।'

'अगर खुदा की इबादत है तो खुदा तो सभी जगह है, जहाँ मन हो वहाँ नमाज पढ़ी जा सकती है।'

'जीऽऽहाँऽऽ,' वह ताना मार कर बोला,—'ये जो हजारों लोग हर साल मक्का-मदीना जाते हैं तो क्या बेवकूफ हैं ?'

'यह मैं क्यों कहूँ कि वे बेवकूफ हैं ? अरे अपने-अपने मन का समझौता है। लेकिन यह बताइये जो गरीब मुसलमान हैं, और जिनकी हैसियत नहीं है कि मक्का शरीफ जा सकें तो क्या वे गिरे हुए इन्सान हैं ? क्या वे आदमी नहीं हैं ?'

'ठीक है, वे भी आदमी हैं किन्तु हाजियों की इज्जत बिरादरी में........'

'मैं जानता हूँ इस इज्जत के दिखावटीपन को मैं उन हाजियों को भी जानता हूँ जो जियारत से लौटते समय स्मगलिंग करने वालों के हथियार बनते हैं। मैं तो

कहता हूँ यदि आदमी-आदमी की कद्र करना जान ले, तो खुदा की यही सबसे बड़ी इबादत है और यही जियारत भी।'

'तो अब आप समाज सेवा करेंगे।'

'कोशिश करूँगा कि मैं कोई सेवा कर सकूँ।'

'तो क्या सेवाग्राम जायेंगे ?'

'नहीं मैं ग्राम सेवा पर जाऊँगा। मैं अपने उस गाँव में जाऊँगा जहाँ अट्ठावन वर्ष पहले पैदा हुआ था।'

'वहाँ क्या है ?'

'यही तो बात है कि वहाँ कुछ नहीं है। हमारा गाँव अभी भी लगभग उसी स्थिति में है जैसा आजादी के पहले था।'

'तो अब नेतागीरी करोगे। अमेंऽऽ लोगों ने अपने आराम के लिए यह देश छोड़ दिया। कनैडा, अमरीका आस्ट्रेलिया और इंगलैण्ड में जाकर बस गये और तुम अपने गाँऽऽव जाओगे !'

'वे स्वार्थी लोग थे, और कोई भी मुल्क कभी स्वार्थी लोगों के कंधों पर तरक्की नहीं कर सका।'

'तो अब आप गाँधी जी बनेंगे।'

'मैं गाँधी जी तो नहीं बन सकता, किन्तु देश को आज छोटे-छोटे गाँधियों की ज़रूरत है।'

'मेरी समझ में तो कुछ आता नहीं।'

'लेकिन मेरी समझ में जो आ रहा है, वह बता रहा हूँ।'

× × ×

रिटायर्मेण्ट के रुपये मिलते ही अमनअली ने पहले अपना मकान ठीक कराया। उनका बड़ा लड़का अब तक में एक अच्छा मिकैनिक बन चुका था। अपनी माँ की शह पाकर वह घर में बहुत पहले से आने लगा था अतः एक नया कमरा बनते ही अमन ली ने उससे एक दिन मुस्कराकर कहा—'अगर तुम्हारा गुस्सा उतर गया हो तो घर चले आओ।'

लड़के ने कुछ झिझक कर कहा,—'सवाल तो आपके गुस्से का था, आपने मुझे निकाला था। अब जब आप बुला रहे हैं तो मैं अवश्य ही घर आ जाऊँगा।'

दूसरे ही दिन बड़ा लड़का घर आ गया। छोटा लड़का अपनी माँ की सहायता से पहले ही दूकान जमा चुका था, किन्तु अमन अली को दुकान से मानसिक संतोष न था। दूकानदारों में सरकारी इन्सपेक्टरों की जो दखलंदाजी होती थी, उससे वे परेशान थे। उन्हें पता था कि यदि वे उस लड़के के धन्धे में आदर्श घुसेड़ेंगे तो उसे दुकान बन्द करके बैठ जाना पड़ेगा।

चार छः महीने वे अपने मन को समझाते रहे और इसी बीच उन्होंने बड़े लड़के

की शादी कर दी। लड़के का घर बसाने के बाद एक दिन अचानक वे अपने गाँव मोहम्मदपुर पहुँच गए।

× × ×

मोहम्मदपुर में किसी जमाने में उनके अब्बा अपने खेत में किसानी करते थे किन्तु सिंचाई के साधनों के अभाव के कारण उसकी उपज से घर का खर्च कठिनाई से ही चला पाते थे। एक दिन ऊब कर उन्होंने अपनी खेती अपने पट्टीदार के हाथ बेच दी थी और शहर में आकर एक कारखाने में चिपक गये थे। अमन अली तब एक किशोर थे जब उनका गाँव छूटा था किन्तु उनका वहाँ आना-जाना बना रहा।

अधिक दिन बीतने पर गाँव में उन्हें पहचानने वाले बहुत थोड़े लोग रह गये। रिटायर होने के बाद जब वे गाँव पहुँचे तो उनको पता चला कि उनका खानदानी भतीजा गुमानअली नेता हो गया है और उन दिनों वह शहर गया हुआ है। गुमान अली के छोटे भाई मुरादअली से मिलने पर उन्हें यह आभास मिला कि वह उन्हें पहचानता तक नही। ऐसी स्थिति मे वे गाँव के बूढ़े लोगों के नाम सोचने लगे। उन्हें गाँव के मुखिया सियाराम सिह के पिता मातादीन की याद आई। वे उनके पास पहुँचे—

'मैंने कहा आदाब अर्ज है, मुझे पहचाना ?'

'कौन ?'

'मैं अमन अली।'

'अरे अमन अली ! कब आये आप ? अब तो आपका चेहरा ही बहुत बदल गया है। सालों बाद देख रहा हूँ, पहले जब देखा था, तो शायद आपके दाढ़ी नहीं थी।'

'हाँ तब नहीं थी, अब इसलिये रख ली कि इससे बड़ी सुविधा रहती है। कौन रोज बैठकर अपने गालों को छीले। ये हमारी बुजुर्गी भी तो बताती है।'

'क्यों नहीं क्यों नही। और शहर का क्या हाल-चाल है ? आप रिटायर-रिटायर हो गये या........'

'हो गया भाईजान, रिटायर होकर ही यहाँ आया हूँ।'

'लेकिन आपकी खेती-वेती तो पहले ही........'

'हाँऽऽऽ, खेती अब कहाँ है। मैं तो इस गाँव में इसलिए आया हूँ कि मै यहाँ पैदा हुआ था। इस मिट्टी का कोई अंश मेरे जिस्म को मिला है। मैं इस मिट्टी का कर्जदार हूँ।'

'वाह भाई अमनअली, जैसा आप सोच रहे हैं, आजकल ऐसा सोचने का किसे अवकाश है। जिन्दगी में भागमभाग मची है। शहर की हवा जिसे लगी, फिर लौटकर गाँव कहाँ आता है। अरे इसी गाँव के लड़के शहर जाकर डाक्टर हो गये हैं। रामरती का लड़का डा० गोपाल यादव तुम्हारे ही शहर में तो दवाखाना खोलकर बैठा है, यहाँ किसी को एक गोली देने नहीं आता।'

'हाँ मैं जानता हूँ, लेकिन मैं इसलिए गाँव में आया हूँ कि मैं अपनी जिन्दगी

का बाकी हिस्सा किसी नेक काम में लगा दूँ। खुदा की मेहरबानी से मेरी सेहत अभी ठीक है। मैं यहाँ रहकर गाँव के विकास के कार्य को आगे बढ़ाने में मदद करूँगा। देखो न, गाँव की तीन किलोमीटर लम्बी सड़क आज भी कच्ची की कच्ची है। सिंचाई के साधनों में भी कोई खास सुधार नहीं हुआ। चकबन्दी तो की गई किन्तु सहकारी खेती और खेतों की मेड़ों में बर्बाद हो रही जमीन की कोई चिन्ता लोगों में नहीं दिखाई देती।'

'अरे हर चुनाव में नेता लोग इन सब चीजों में सुधार करने का वादा करते है किन्तु........अब आप को क्या बताएँ इस गाँव के दस कोस तक कहीं एक ट्रैक्टर नहीं है। गाँव का वह स्कूल जिसमें ककहरा पढ़ते हुए हमारी तुम्हारी दोस्ती हुई थी, आजकल भी क ख ग ही पढ़ा रहा है और लड़ाई अलग। रोज मार-पीट। हिन्दू मुसलमान की लड़ाई के लिये तो हम कहते थे कि अंग्रेज लड़वाते हैं, लेकिन अब हरिजन और सुरजन (सवर्ण) जो लड़ रहे हैं उन्हें कौन लड़वा रहा है!'

'यही तो अफ़सोस है कि हमारे शासक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सके। हमें लोगों में जागृति पैदा करनी होगी कि वास्तव में उनका दुश्मन कौन है। हमारी सबसे बड़ी दुश्मन है हमारी जाहिलियत, और फिर गरीबी। हम अगर लोगो को सर्वप्रथम साक्षर कर दें तो उनकी गरीबी दूर करने में सहूलियत होगी।'

'बात तो ठीक है लेकिन........'

'लेकिन-वेकिन जैसी समस्याएँ तो रहेंगी ही, चलो मुझे जरा गाँव की मस्जिद के इमाम से मिलवा दो, मैं अपने रहने का बन्दोबस्त वहीं करना चाहता हूँ। मैं वहीं पर एक स्कूल चलाना शुरू करूँगा।'

'चलिये-चलिये अभी मैं पीर साहब से मिलवा देता हूँ'

× × ×

अमन अली की मुलाकात पीर साहब से हुई जरूर, किन्तु उन्होंने मात्र दो रात मस्जिद में रहने की अनुमति दी। अमन अली के सद्विचारों से अवगत होने के बाद भी पीर साहब को अन्दर-अन्दर यह डर लगा कि कहीं यह शख्स मेरी शह पाकर मस्जिद पर धीरे-धीरे कब्जा ना कर ले।

अमन अली ने दो रातें मस्जिद में काटीं और दो दिन के अन्दर ही उन्होंने गाँव के कब्रिस्तान में बनी एक टूटी मजार की छतरी ढूँढ़ ली। उन्होंने अपनी जेब से कुछ पैसे खर्च करके पहले टूटी मजार ठीक करवाई, फिर उसे रँगवा दिया। अब वे वहीं रहने लगे। मजार पर नियमित दिया जलने लगा और अगरबत्ती भी सुलगने लगी। वह मजार संयोग से पीर साहब के बड़े भाई की थी। चार-पाँच दिन बाद उन्हें जब मालूम हुआ कि अमन अली ने उनके भाई की मजार की रौनक ही दूसरी कर दी, तो वे स्वयं उनसे मिलने गये। उन्होंने गाँव के मुसलमानों को खबर दे दी कि उनके बड़े भाई की रूह ने शहर से आये अमन अली नाम के एक आदमी को इलहाम दिया है कि वे उनकी मजार ठीक करावें, और मजार की कायापलट हो गई है।

गाँव के कुछ मुसलमान यह खबर पाते ही माला और बताशे चढ़ाने पहुँच गए। कुछ दिनों बाद अमन अली ने देखा कि मजार के चारों तरफ चादरें बिछाई जा रही है। शाम होते ही वहाँ गैस के दो हण्डे भी पहुँच गए। दो कव्वाल ढोलक लेकर गाने बैठ गए और देखते-देखते आधा गाँव वहाँ पहुँच गया। हिन्दू, मुसलमान, हरिजन और सुरजन सभी कव्वाली सुनने पहुँच गए। आधी रात तक कव्वालियाँ होती रहीं। जलसा खत्म होने पर पीर साहब ने मजारों पर रूहों को बुलाने और कब्रों को जगाने पर रोशनी डाली। वे अमन अली की तारीफ करते हुए बोले, आज का जलसा जो यहाँ हुआ उसके पीछे अमनअली साहब हैं। मेरी बातचीत उनसे हुई है। कल से वे इसी मजार के हाते में गाँव के उन लड़कों को तथा जवान और बूढ़ों को भी मुफ्त पढ़ाएँगे जो स्कूल की फीसें नहीं दे पाते।

दूसरे दिन से मजार के पास एक पेड़ के नीचे छोटा-सा स्कूल लगने लगा। दस-बारह दिन के अन्दर ही वहाँ बीस-बाइस बच्चे, बूढ़े व जवान पहुँचने लगे। एक दिन अमन अली ने अपने छात्रों से कहा कि वे गाँव वालों के सामने एक योजना रखना चाहते हैं, अतः निवेदन है कि कल आप लोग अपने माता-पिता, मित्रों और सम्बन्धियों के साथ यहाँ आयें।

अगले दिन अमन अली ने देखा उनके सामने २५-३० आदमी पहुँच गए हैं। अमन अली अन्दर ही अन्दर प्रसन्न होकर बोले—मैंने नहीं समझा था कि मेरे एक बुलावे पर आप लोग इतनी आसानी से यहाँ आ जायेंगे। आपके आने से यह साबित हुआ कि आपके मन के किसी कोने में कुछ जिज्ञासाएँ हैं। मैंने आप लोगों को इसलिए बुलाया कि हम-आप मिलकर कुछ ऐसा काम करें जिससे इस गाँव का कल्याण हो सके। हमारे गाँव के उत्तर में एक बहुत बड़ी चट्टान है जिसे आप लोग पहाड़ियाँ कहते हैं। मेरी योजना है कि जब तक बरसात नहीं आती हम अधिक से अधिक समय देकर इस चट्टान से गिट्टियाँ तोड़ लें और गाँव की तीन किलोमीटर लम्बी कच्ची सड़क पर बिछाने की कोशिश करें। मैने जिला परिषद के अधिकारियों से भी कुछ दिन पहले बात की थी, उन्हें चट्टान के तोड़े जाने में कोई आपत्ति नहीं है। हम लोग अगर अपने गाँव की सड़क पक्की करने के लिए इतना कर लेंगे तो जिला परिषद की सहायता से हमें बालू और तारकोल भी मिल जायेगा। आपके गाँव तक बस और ट्रक आने लगेंगी और आप अपने गाँव की उपज आसानी से शहर पहुँचा सकेंगे।

अमन अली की बात लोगों को अच्छी लगी और दूसरे दिन से ही चट्टान पर हथौड़े चलने लगे। गाँव के मुखिया सियाराम सिंह की सहायता से देखते-देखते महीने भर में आधी सड़क पर गिट्टी पड़ गई। अगल-बगल की जमीन से मिट्टी खोदकर सड़क पर डाली गई और सड़क की कुटाई पत्थरों के मुग्दरों से होने लगी।

लगभग डेढ़ महीने बाद गुमान अली जब गाँव लौटा तो गाँव की सड़क पर गिट्टी पड़ी देखकर विस्मय में आ गया। इक्के वाले से उसे ज्ञात हुआ कि गाँव में

१२३५८

कोई अमन अली नाम का आदमी आया है। उसकी सूझ-बूझ ने ही वह सड़क श्रमदान के बल पर बनवा दी। गुमान अली अन्दर ही अन्दर परेशान हुआ। यह कौन नया नेता पैदा हो गया। इसको साले को हमारे क्षेत्र में ही आकर सेंध लगानी थी! इतनी मुश्किल से तो पटरी बैठाई कि शासक दल का टिकट आगामी चुनाव के लिए मिल जाए और यह साला नया नेता यहाँ आकर जम गया। साले ने डेढ़ महीने के अन्दर ही गाँव के इतने आदमी अपने साथ कर लिये। जाने किस राजनीतिक पार्टी का आदमी है! किसी गाँव का भी हो, ऐसे खतरनाक आदमी को गाँव में नहीं रहने दिया जा सकता।

गाँव में पहुँचते ही उसने अपने भाई मुबारक अली से पूछा—

'यह अमन अली कौन है?'

'अरे! आप उसे नहीं जानते? वह तो कहता था कि आप उसे जानते हैं। गाँव आने पर पहले यहीं आया था। कह रहा था मैं रिश्ते में तुम्हारा चच्चा हूँ। आजकल वह पीर साहब के भाई की मजार पर रह रहा है।'

'अरे ये नेता साले बड़े बहुरूपिये होते हैं। हमारे खेत को चरने आया तो हमारा ही रिश्तेदार बन गया। जरा उसे बुला कर तो लाओ, मैं उससे बात करना चाहता हूँ।'

मुबारक अली बड़े भाई का आदेश पाते ही वहाँ से चलने को हुआ, किन्तु गुमान अली ने तुरन्त कुछ सोचकर उसे रोक दिया और बोला,—'यहाँ गाँव के अन्दर बुलाने से कोई फायदा नहीं, बेकार की भीड़ लगेगी और...............मैं समझ गया हूँ वह कौन है। मैं स्वयं उससे बात कर लूँगा।'

शाम होते-होते गुमान अली मजार पर पहुँच गया। अमन अली नमाज पढ़ रहा था। गुमान अली उसके सामने की ओर चुपचाप बैठ गया। नमाज पढ़ चुकने के बाद अमन अली की दृष्टि उधर पड़ी।

'कौन हो भाई?'

'अजी अब आप क्यों पहचानेंगे'

'अरे गुमान अली, तुम! तुम कब गाँव लौटे? मैं तो पहले घर ही गया था, लेकिन मुबारक ने मुझे पहचाना ही नहीं, मैंने सोचा चलो यहीं मजार में रह लूँगा। पीर साहब के यहाँ खाना खा लेता हूँ।'

'मुबारक अली ने नहीं पहचाना तो मुझसे क्यों बदला ले रहे हैं?'

'बदला! काहे का बदला?'

'बनने की कोशिश करने से क्या फायदा! गाँव के अन्दर इतना बड़ा अभियान चलाने का आखिर कोई तो उद्देश्य होगा। आप किस पार्टी की तरफ से काम कर रहे हैं?'

'यह क्या कह रहे हो! मैं किसी पार्टी से कोई मतलब नहीं रखता, मैंने मात्र सेवा भाव से...........!'

'पब्लिक को मूर्ख बनाते हो। जिन्दगी भर सरकारी कुर्सी पर बैठ कर रकम बना रहे और अब एम० एल० ए० बनने की सूझ रही है। मैं ऐसे स्वार्थी लोगों को चचा बचा नहीं मानता। मात्र सेवा भाव............... ! अरे आजकल लोग अपनी औलाद की सेवा तो करते नहीं, तुम कहाँ के फरिश्ता पैदा हो गए। आपकी कौन सी पार्टी है ?'

'मैंने बताया ना, किसी पार्टी का आदमी मैं नहीं हूँ।'

'औलाद की कसम खाइये।'

'क्यों, क्या मेरा कहना काफी नहीं है ?'

'बस मालूम हो गया, अब झूठ बोलते रहने से कोई फायदा नहीं होगा।'

'झूठ ! कैसा झूठ ? मैंने औलाद की कसम नहीं खाई तो मेरी बात झूठी हो गयी। क्या मेरी अपनी कोई औकात नहीं ?'

'तो फिर आप औलाद की कसम...........।'

गुमान अली जिस तेवर से बात कर रहा था। अमन अली उससे डर गया। उसने औलाद की कसम खा ली और गुमान अली ने कहा—'कल से आप जो भी समाज सेवा का काम करेंगे हमारी पार्टी के नाम पर करेंगे।'

'लेकिन मैं तो...........।'

'कुछ नहीं, कल पंचायत घर के चबूतरे पर मैं एक मीटिंग बुलवा रहा हूँ। वहाँ आप मेरा स्वागत करेंगे और घोषणा करेंगे कि यह जो सड़क निर्माण का काम हुआ है, वह हमारी पार्टी की प्रेरणा से हुआ है।'

'लेकिन यह तो सफेद झूठ होगा।'

'झूठ हो या सच आपका नुकसान क्या है ?'

'मेरा नुकसान हो या न हो जनता को धोखे में क्यों रखा जाय।'

'जनता तो हमेशा धोखे में रहेगी, तुम राजनीति नहीं जानते। अरे उसे धोखे मे हम नहीं रखेंगे तो कोई और रख लेगा।'

'लेकिन मैं जो इतना झूठ बोलूँगा, उसका मुझे क्या लाभ ?'

'अब आपने सौदे की बात की। हम आपको फायदा कराएँगे।'

'लेकिन मैं इस तरह का फायदा नहीं चाहता। मैं तो गाँव का सुधार.... ।'

'अजी सुधार तो होगा ही, देश आजाद हुआ है तो सुधार भी होगा।'

'लेकिन...........।'

'लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। दो टुकड़ों में बात कीजिये। जैसा मैंने कहा है, वह आप करने को तैयार हैं या नहीं ?'

अमनअली चुप होकर गुमान अली का मुँह ताकने लगे। गुमानअली ने अपनी तीखी नजरें अमनअली की आँखों में गड़ाकर कहा—'कल सुबह होते ही आप गाँव के बाहर हो जाइये, नहीं तो झोपड़ा तुड़वा दिया जायेगा।'

'अरे गुमान अली यह तुम कह...........।'

कुछ नहीं, मुझे भी राजनीति आती है, आप ही नहीं जानते। चुनाव आ रहे हैं, गाँव के आदमी आपकी वाहवाही कर रहे हैं। किसी पार्टी ने अन्तिम समय तक भी आपको कोई थैली पकड़ाकर अगर आपको अपना मोहरा बना लिया तो, मैं तो फिर मात ही खा जाऊँगा।'

'लेकिन मुझसे राजनीति से कोई मतलब नहीं।'

'हो सकता है। अभी न हो, लेकिन कल भी नहीं रहेगा, इसकी क्या गारन्टी है? मैं कोई जोखिम उठाने को तैयार नहीं। आपने मेरी बात सुन ली ना?'

अमन अली ने अपने हाथ से अपनी आँखों को बन्द कर लिया और हताश-सा होकर वहीं बैठ गए। गुमान अली तिरछी आँखों से देखता हुआ वहाँ से चला गया।

मुझे अब क्या करना चाहिये—अमनअली सोच रहे थे—ये बातें पीर साहब को बताऊँ या न बताऊँ, गाँव के मुखिया से अगर सब बात बताऊँगा तो वह अवश्य गुमान अली से बात करेगा और गुमान अली जैसा आदमी है, उससे झगड़ा ही बढ़ जाने की आशंका है। पहला शिकार मैं ही हो सकता हूँ। तो क्या मैं शहर लौट चलूँ? किन्तु यह तो मेरी बहुत बड़ी कायरता होगी........। कायरता! मैं इसे कायरता कहूँ या नहीं? जो भी हो किन्तु मेरे चले जाने से गुमान अली कोई भी प्रचार यहाँ शुरू कर सकता है—वह कह देगा यह सब उसकी योजनानुसार हुआ है। मेरे बारे में कहेगा—अमन अली उसकी पार्टी का काम करने अब दूसरे गाँव गए हुये हैं। किसी अपात्र को अवांछित सम्पत्ति का दान उसके कुकर्म को बढ़ावा देना है। मैं अभी कुछ दिन गाँव में रहूँगा। किसी से कुछ नहीं कहूँगा। पीर साहब से भी नहीं।

दूसरे दिन अमन अली ने अपना स्कूल नहीं चलाया। दिन भर मजार के पास नीम के पेड़ के नीचे लेटे रहे। शाम को नमाज पढ़कर मजार पर दिया जलाने ही वाले थे कि पीछे से उनके सिर पर तड़ातड़ चार लाठियाँ पड़ी, और वे वहीं ढेर हो गये। मारने वाले क्षण भर में गायब हो गये।

बहुत रात तक जब अमन अली पीर साहब के घर नहीं पहुँचे तो पीर साहब स्वयं मजार की तरफ पहुँचे। देखा अमनअली मरे पड़े है। पीर साहब का कलेजा धक से हो गया। बेचारे भाग कर गाँव पहुँचे। लोगों को खबर दी और ये खबर जंगल की आग की तरह गाँव भर में फैल गयी। लोगों की भीड़ मजार की तरफ चल पड़ी। इस भीड़ में गुमान अली सबसे आगे था और 'अमन अली अमर रहे' के नारे लगवा रहा था।

मजार के हाते में पहुँचकर गुमान अली के चेलों ने एक शोक सभा संयोजित कर दी। गुमान अली अध्यक्ष बनाये गये और सभा में अमन अली की विशेषताओं को गिनवाकर ऐलान किया गया—हम लोग अमन अली को मारने वालों को ढूँढ़ कर रहेंगे और उनको कड़ी से कड़ी सजा दिलवा कर रहेंगे।

गुमान अली ने अपने भाषण में कहा—अमन अली जैसा नेक आदमी हमारे ही खानदान का आदमी था। वे हमारे खानदानी चचा थे, गाँव के पुराने लोग जानते हैं। हम अपनी खानदानी जमीन से उनकी मजार के लिए एक चौरस टुकड़ा दान करते हैं। हम उनकी मजार पर अधिक से अधिक खर्च सहन करेंगे।

गुमान अली की उदारताभरी बातों को सुनकर एकत्र लोगों ने उनकी जय-जयकार की और अमन अली की लाश पुलिस के हवाले कर दी।

कुछ दिन बाद अमर अली के बेटों ने अपने अब्बा का अपने गाँव के प्रति लगाव देखकर मोहम्मद पुर में ही उनकी कब्र बनवा दी और गुमान अली ने उस पर एक अच्छी सी छतरी बनवा दी।

नए चुनाव में गुमान अली को अपने गाँव से तो सर्वाधिक वोट मिले ही, सम्पूर्ण चुनाव क्षेत्र से भी आधे से अधिक वोट मिले।

वह तीन साल से विधान सभा में जनता के हितों की रक्षा कर रहा है, किन्तु पुलिस को अभी भी यह पता नही चल पाया है कि अमन अली क्यों मारे गए और उनको मारने अथवा मरवाने वाले कौन थे। □

रिश्ता, खून का

पाकिस्तान का बटवारा हुआ और.......

गृह युद्ध शुरू होने के तीन चार महीने बाद ही त्रिपुरा की सीमा से सम्बद्ध सम्पूर्ण क्षेत्र देखते-देखते शरणार्थियों की भीड़ से उसी तरह भर गया जैसे मोहर्रम का कोई जुलूस कर्बले से मातम मना कर लौट रहा हो।

भारत सरकार ने शिविर लगाए और वे नंगे, भूखे और घायल लोगों से भरने लगे। अखौरा, कोमिल्ला, फेनी और मेजदी के लगभग सम्पूर्ण नागरिक बूढ़े और नन्हीं कलियों से लेकर ठूंठ बुढ़ियों के झुण्ड शिवरों में सिमट आये।

सीमा घोष अभी जीप से उतर कर रेड-क्रास कैम्प में घुसी ही थी कि डॉ० विलियम सिंह ने मरीज की नाड़ी नापते हुए कहा—'सिस्टर तुम बहुत समय से आईं। क्या तुम्हारे साथ कुछ ब्लडबाटिल्स भी आई हैं ? इसे बचाने के लिये इस समय दो पौण्ड खून की आवश्यकता है।

सीमा ने साथ लाये हुये हैण्ड-बैग को खोला और कहा—'लो देखो, इसमें से कौन-सा रक्त इसके माफिक होगा।' डाक्टर ने खून से भरी हुई बोतलों के लेबिल देखे और कहा—'इसे किसी जवान औरत का खून चाहिये। ये सारी बोतलें इसके काम की नहीं हैं।'

सीमा ने एक क्षण को कुछ सोचा और बोली—'आप मेरा रक्त लेकर देखें।'

'तुम्हारा रक्त ! नहीं तुम उतना रक्त नहीं दे सकोगी। बहुत कमजोर हो जाओगी।'

'किन्तु डाक्टर !'

'हूं बोलो ना।'

'मैं कहना चाहती थी कि मैं अपना रक्त देकर अपनी ड्यूटी तो पूरी कर सकूँगी।'

'ड्यूटी ! क्या तुम्हारा यहाँ तक आना ड्यूटी पूरा करना नहीं हुआ ?'

'ड्यूटी तो यहाँ तक आने के बाद शुरू होती है। मेरी पहली ड्यूटी है मेरी उपस्थिति से मेरे मरीज की हालत ठीक होना।'

डॉ० विलियम सिंह ने एक क्षण तक सीमा को देखा और फिर देखा अपने मरीज को जो उस समय बेहोश हो चुकी थी। वह उस सीमा का दूसरा रूप थी। डॉ०

विलियम ने सिरिंज लगा कर सीमा का थोड़ा-सा खून लिया और दूसरे सिरिंज में सीमा पार से आयी उस युवती का खून लेकर पैथालाजिस्ट के कैम्प में भेज दिया। सीमा घोष शिविर में लेटे हुए अन्य घायलों को देखने आगे बढ़ीं, किन्तु डाक्टर ने उसे रोक लिया और कहा—'अब इस मरीज का पूरा इलाज हो जाने दो। मुझे आशा है तुम्हारा रक्त इसके अनुरूप पड़ेगा।'

सीमा रुक गई। उसने उस शिविर में आये हुये अन्य घायलों की सूची बनाना शुरू की। अधिकतर शरणार्थी कोमिल्ला के गाँवों से आये थे। सूची पूरी होते-होते पैथालाजिस्ट की रिपोर्ट आ गयी। सीमा का खून उसके पूर्ण अनुरूप निकला। डाक्टर ने रिपोर्ट देखी और एक बार पुनः दृष्टि गड़ा कर पूछा 'सिस्टर, तुमने रिपोर्ट देखी?' डाक्टर की आँखों में आँखें भर कर बोली,—'ठीक तो है। आप मेरा खून लेने से झिझक क्यों रहे हैं।'

'मुझे ऐसा करने का अधिकार नहीं है। और फिर यह खून किसको दिया जायगा तुम्हें मालूम है?'

'एक उस पाकिस्तानी औरत को जो हमसे नफरत करती रही है, किन्तु हम शायद अपना पहला ही पाठ भूल रहे हैं। नर्स का पहला पाठ है मानवता। मैंने यह नर्स का पेशा भी मानवता की सेवा के लिये ही अपनाया था। काश ये पाकिस्तानी ही क्यों न होती, मैं अपनी सेवा देने में न झिझकती, किन्तु अब तो यह स्वतन्त्र बांगला देश की नागरिक....।'

'किन्तु मेरी कुछ और सीमाएँ भी हैं।'

'मैं उन्हें भी जानती हूँ। मैं किसी से नहीं कहूँगी कि मैंने ड्यूटी पर रह कर रक्तदान किया है।'

'किन्तु इस रक्तदान से तुम्हारी क्या दशा होगी।'

'हमारी दशा। हमारी इन सेवाओं से हमारे देश की जो दशा हो रही है, उससे भिन्न नहीं होगी।'

'इसीलिये तो झिझक रहा हूँ। आखिर सीमाएँ तो हर जगह हैं।'

'किन्तु मानवता की कोई सीमा नहीं। वह देश, काल और पात्र को नहीं मानती।' सीमा कुछ रुकी और फिर धीरे से बोली, आपको तो मालूम है कि सिवा एक बूढ़ी माँ के मेरा है ही कौन! मरना होता तो जाने कब मर जाती, किन्तु आज यदि किसी को जीवन दान देकर मरूँगी तो मेरी आत्मा को शायद अधिक शान्ति मिलेगी।'

'सीमा!'

'तो क्या मैं सचमुच मर जाऊँगी? इतने बड़े शरीर से पाव भर भी रक्त देने लायक मैं नहीं हूँ।....मैं कहती हूँ आखिर क्या सोच रहे है आप! यदि कोई मेरी अपनी संतान होती तो क्या उसे मेरा पाव भर दूध भी न मिलता। दूध और रक्त में अन्तर

ही क्या है । मैं मात्र अपने पावभर रक्त के लिये किसी की जान जाती नहीं देख सकती ।

डाक्टर ने सीमा की बाहों में रक्त लेने की नली लगाते हुये कहा, 'अच्छा तो तुम्हारी जो इच्छा ।'

सीमा चुप रही । वह तुरन्त एक स्ट्रेचर पर लेट गयी और उसका रक्त बोतल में आने लगा । सीमा की आँखें धीरे-धीरे बन्द होने लगीं और जब तक वह बोतल भरी, सीमा लगभग अचेत हो गयी । डाक्टर उसकी नाड़ी पकड़े हुए था । सीमा की अचेत अवस्था के उपरान्त भी उसके जीवन को कोई खतरा नहीं था । डाक्टर ने नली हटाई और तुरन्त ही उसका उपयोग अपने मरीज के लिये शुरू कर दिया ।

थोड़ी ही देर में मरीज ने आँखें खोली तो शर्म से अपना मुँह छुपाने लगी । डाक्टर ने उसे धीरज बँधाया और उसका नाम पूछा । वह धीरे से उठ कर बैठी और इसी क्षण डाक्टर ने देखा कि सीमा भी होश में आ गई है । इससे पूर्व कि डाक्टर सीमा से कुछ कहे सीमा स्वयं उठ बैठी और उसने सबसे पहले उससे उसका नाम पूछा ।

'मेरा नाम सलमा है ।'

'कौन सा गाँव ।'

'मस्जिद पुरा ।'

'मस्जिद पुरा !!'

'तो क्या आप उस गाँव से परिचित हैं ?'

'अब्बा का नाम ?'

'नईम खाँ ।'

'तो तुम नईम खाँ की....।'

'क्या आप उन्हें पहले से जानती हैं ?'

सीमा ने थोड़ा अपना मस्तक रगड़ कर पूछा, 'क्या तुम्हारे भाई का नाम इश्रत खाँ है ।'

'हाँ, हाँ, इश्रत खाँ था ।'

'था ! क्यों अब कहाँ हैं ।'

सलमा रो पड़ी । उसने आँसू भर कर कहा, 'कमबख्त पंजाबियों ने उन्हें घर में घुस कर जिन्दा जला दिया, किन्तु आप उन्हें कैसे जानती हैं ।'

'मैं भी मस्जिद पुरा में रहती थी ।'

सलमा ने उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया और पूछा—'आपके पिता का नाम ।'

'शिशिर बाबू था । क्या तुम्हें शिप्रा की याद है ?'

'शिप्रा दीदी, हाँ, हाँ हम तब शायद ८, ९ वर्ष के थे । हम उसकी छोटी बहन

के साथ आम के पेड़ों पर झूला झूला करते थे। अच्छा सा नाम था उसका शायद सीमा।'

'तो वो सीमा कहाँ गयी ?'

'याद नहीं। सुनते हैं पाकिस्तान बनते ही वो हिन्दुस्तान चली आयी थी।'

सीमा चुप हो गयी किन्तु सलमा ने उसे घूर कर देखा और कहा—'तो तुम सीमा हो ?'

'हाँ।'

इसके पूर्व कि सलमा उससे कुछ और बातें करती, सीमा वहाँ से तुरन्त चल दी। सलमा ने उसे उठकर पकड़ना चाहा किन्तु डाक्टर ने उसे रोक लिया। डाक्टर अब उसकी अन्य चोटों की मलहम-पट्टी कर रहा था। उसके घावों पर पट्टी बाँध कर चुपचाप लेट जाने का आदेश दिया और वह चुप लेट गयं.।

सलमा के बीते हुये दिन अब उसकी ताजी चोटों से कहीं ज्यादा उसे दर्द देने लगे। उसने बड़े होते-होते वह सारी कहानी सुन रखी थी जो उसके भाई और बाप के द्वारा शिशर बाबू के परिवार के साथ घटी थी। शिप्रा से इश्रत ने जबर्दस्ती निकाह कर लिया था और शिप्रा ने आत्मदाह कर उसके भाई से मुक्ति पाई थी। शिशिर बाबू गाँव के बाहर भागने के पूर्व ही अपने आँगन में मार डाले गये थे और सीमा तथा उसकी मा कुछ दिन पहले ही अखौरा में अपनी ननिहाल चले जाने के कारण बच कर निकल आयी थीं। जिस मकान में नईम और इश्रत जिन्दा जला दिये गये थे वह शिशिर बाबू का ही था। पुरानी पट्टीदारी का बदला पाकिस्तान बनने पर लिया गया था। सलमा ने करवट बदल कर दूर तक उस तरफ ताका जिधर सीमा चली गयी थी, किन्तु उसे सीमा दिखाई नहीं दी वह करवटें बदलती रही और उसको लगा जैसे उसे वहाँ पर जिन्दा रहने का कोई अधिकार नहीं है। वह मानसिक रूप से जितनी उद्विग्न होती जा रही थी शारीरिक रूप से उतनी ही शिथिल और विवश होकर पड़ी थी। वह बेचैनी के साथ करवटें बदलती रही और उसने डाक्टर से थोड़ा पानी माँगा। पानी पीने के बाद ही धीरे से पूछा—'मुझे खून चाहिये था ना !'

'नहीं तो।'

'मैंने स्वयं आपके मुख से सुना था। मैं उस समय तक बेहोश नहीं हुई थी।'

'किन्तु तुमको इससे क्या लेना-देना ?'

'मुझे किसने अपना खून दिया ?'

'मुझे नही मालूम।'

'क्या आप थोड़ी देर के लिये सीमा को बुला देंगे।'

'सीमा तो अभी और मरीजों को देख रही है।'

अब सलमा ने अपने नाजुक हाथों से डाक्टर का हाथ पकड़ कर कहा—'मुझे यह तो बताते जाइये आखिर मुझे खून किसने दिया ?

'डाक्टर खून की बोतल से मरीज को खून देता है। उसे इससे मतलब नही होता कि वह किसका है।'

'तो क्या सचमुच आपको नहीं मालूम ? न जाने क्यों मुझे यह जिन्दगी जीना अच्छा नहीं लग रहा है।'

'अधिक भावुक मत बनो। तुम्हें अपने इलाज से ही मतलब रखना चाहिये। मैं सीमा को अभी तुम्हारे पास भेजता हूँ।' डाक्टर सलमा की नजरों से छिप गया और थोड़ी ही देर में आई वहाँ एक बूढ़ी औरत। उसने पूर्वी अंचल की बंगला बोलते हुये पूछा—'क्या तुम्हारा ही नाम सलमा है।'

'हाँ, हाँ, आप कौन हैं।'

'क्या मस्जिद पुरा से तुम्हीं आई हो ?'

'हम क्या बहुत से आये हैं। मैं भी वहीं से आई हूँ। आपका परिचय ?'

'क्या नईम खां और इश्रत खां सचमुच मार डाले गये।'

'हाँ जिन्दा जला दिये गये। मेरी आँखों के सामने। मैं भी उनके हाथों में पड गई थी किन्तु उसी क्षण बंगला देश की मुक्ति वाहिनी सेना उधर आ गयी और उन्होंने मुझे उनके हाथ से छुड़ा लिया। कम्बख्त पंजाबियों ने भेड़ियों की तरह लोगों की बोटियाँ नोचनी शुरू कर दी हैं।' सलमा ने अपनी कारुणिक दृष्टि आगन्तुका पर फिर डाली और तीव्रता से पूछा,—'आखिर आप अपना तो परिचय दें।'

'मैं सीमा की माँ हूँ' वह गर्व से बोली—'सीमा ने ही अपना खून देकर तुम्हे बचाया है। उसने ही इस कैम्प में तुम्हारे आने का समाचार मुझे दिया।

सलमा सीमा का नाम सुनते ही अपने शरीर की दशा भूल, बिस्तरे से नीचे आ गई और उसने सीमा की माँ के पैरों पर अपना सिर टेक दिया। सीमा की माँ भाव विह्वल हो उठी। उसने उसको उठा कर सीने से लगाया और बोली, घबड़ाओ नही हम तुमसे कोई प्रतिशोध लेना नहीं चाहते।'

सलमा ने चीख कर कहा—'मैं आपके एहसान से कभी मुक्त नहीं हो सकती। काश मैं उन सभी विस्थापित परिवारों को पुनः इस नये बांगला देश में लौटा कर ले जा सकती जो पाकिस्तान बनने से यहाँ चले आये थे।' सलमा के मुँह से एक चीख निकली और वह वहीं लुढ़क गई। वह फिर बेहोश हो गई। सीमा की माँ सलमा को जमीन पर छोड़ कर डाक्टर को बुलाने दौड़ी, किन्तु डाक्टर अपने आप ही उधर आ रहा था। उसने सलमा की कलाई पकड़ कर उसकी नाड़ी ढूँढ़ना शुरू की और सीमा की माँ की ओर देखकर कहा,—'इसका तो जीवन शेष हो गया। इसे जरूर किसी ने बता दिया होगा कि उसको सीमा ने अपना रक्त दिया है। यह एहसान के बोझ से मर गयी। मरीज हमदर्दी चाहता है, एहसान नही। किसने बताया इसे ?'

'मैंने।'

'क्यों ?

'किन्तु इसमें एहसान की क्या बात थी। वह तो हमारे ही खानदान की बेटी थी, हमारे ही घर की थी, हमारा उसका तो खून का रिश्ता था। हमें तो उसे बचाना ही चाहिये था।'

'आपका उसका खून का रिश्ता था!'

'हाँ, सलमा के परदादा हमारी सीमा के पर दादा के छोटे भाई थे। उन्होंने बंगाल के नवाब की खिदमतदारी में इस्लाम धर्म कबूल कर लिया था, किन्तु आखिर हम थे तो एक ही। हमें अपना इतिहास पता है। सीमा ने जो कुछ किया वह उसके संस्कार थे, उसकी धरती के संस्कार। काश सलमा भी अपने सही इतिहास को जान पाती। उसने सलमा को रक्त देकर उस पर कोई एहसान नहीं किया।'

डाक्टर विलियम सिंह कुछ देर तक फटी हुई आँखों से सीमा की माँ को देखता रहा। उसे लगा जैसे सीमा की माँ उसको भी उसका कुछ इतिहास बताना चाहती है। वह अपनी ममता के कुछ अंश उससे भी जोड़ना चाहती हैं। डाक्टर ने ऊपर से नीचे तक सीमा की माँ को देखकर कुछ बोलना ही चाहा कि वहाँ सीमा आ गयी। सम्पूर्ण स्थिति किसी दूसरे ही स्वरूप में बदल गयी और सीमा सलमा को मृतावस्था में देखकर चीख पड़ी। 'क्या हमारा रक्त बेकार चला गया?'

डाक्टर ने आगे बढ़कर कहा, 'खून कभी बेकार नहीं जाता। सलमा मर गयी तो क्या है तुम्हारे खून से तुम्हारे देश का दूसरा टुकड़ा बांगला देश जीवित हो गया है।'

सीमा फफक-फफक कर रो रही थी और सीमा के उस पार से जय बांगला देश के नारे सुनाई दे रहे थे। □

वसीयत, अशरफ़ की

उस दिन रेलवे की ट्रैफिक-कालोनी में सबसे विस्मयजनक चर्चा की बात थी अशरफ हुसेन की वसीयत, जो आशा के नाम लिखी गयी थी।

यह वसीयत गोपाल दास एडवोकेट ने स्वर्गीय अशरफ के क्वाटर पर आकर उस समय सुनाई थी जब अशरफ की लाश कब्रिस्तान में दफना कर लोग उनके क्वाटर को वापस लौटे थे। उनकी बेगम हुस्ना जो सालों से उस क्वाटर में नहीं दिखाई दी थी उस दिन अपना हक जताते हुए रो-रो कर दीवालों से पूछ रही थी कि लाश दफनाने के पहले उसे क्यों नहीं खबर दी गई ? अशरफ हुसेन की मृत्यु के समय उनके क्वाटर से अगल-बगल के कुछ लोगों के साथ ही श्रीमती आशा भी अपने पुत्र राजेश के साथ उपस्थित थीं और उन्होंने ही अशरफ की तबियत खराब होने पर ड्राइवर मसीह के घर से टेलीफोन करके रेलवे के डाक्टर को बुलाया था।

अशरफ की मृत्यु की घोषणा करने के बाद डाक्टर बड़ी देर तक आशा देवी को सान्त्वना देता रहा था, क्योंकि वह जब कभी भी अशरफ की बीमारी के सम्बन्ध में वहाँ आया था उसे आशा देवी ही उसकी तीमारदारी पर दिखाई देती रही थी। डाक्टर को यह तो पता था कि वह अशरफ की पत्नी नहीं है किन्तु उसे यह नहीं मालूम था कि वह उसकी कोई सम्बन्धी भी नहीं है।

लाश उठ जाने के बाद क्वाटर में सन्नाटा छा गया था और वहाँ आशा देवी तथा सात-आठ अन्य महिलाएँ रह गयी थीं। सभी इसी चिन्ता में थीं कि अशरफ के किसी रिश्तेदार को खबर कर दी जाय, किन्तु अशरफ ने अपनी मृत्यु के अन्तिम समय तक भी अपने किसी सम्बन्धी का अता-पता नहीं बताया था। कुछ लोगों को अशरफ की पत्नी के बारे में यह तो मालूम था कि वह कुछ साल पहले उसे छोड़ कर किसी और के साथ रहने लगी थी, किन्तु वह रहती कहाँ थी यह पता नहीं चल सका था। जाने किस प्रकार से अशरफ की मृत्यु का समाचार हुस्ना बेगम को मिल गया। वह वहाँ पहुँच कर जोर-जोर से रोने लगी थी। लोगों ने उसे समझाना शुरू किया और आशा देवी वहाँ से चुपचाप खिसक कर अपने क्वाटर में पहुँच गयी थीं।

शाम का समय हो गया था, लोग कब्रिस्तान से लौट कर क्वाटर पर पहुँचे ही थे कि उन्हीं के पीछे-पीछे गोपालदास एडवोकेट ने भी अशरफ मियाँ के क्वाटर में

प्रवेश किया। कुछ देर वे अशरफ मियाँ की बेगम का नाटक देखते रहे फिर उन्हो ने वहाँ इकट्ठा हुए लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर जेब से एक कागज निकाला और बोले यह जनाब अफरफ हुसेन की वसीयत है, जिसे उनके वकील यानी मेरे साथी जनाब इशरत अली एडवोकेट ने उनकी मर्जी से ड्राफ्ट किया था और जिसकी कापी 'कचहरी मे सिर्फ तीन महीने पहले दाखिल की गई है। मुझे अशरफ मियाँ की मृत्यु की सूचना अल्बर्ट ने जो आपकी कालोनी में ही रहते हैं, दी और मैं यहाँ आकर जो दृश्य देख रहा हूँ उसके देखते हुये यह आवश्यक समझता हूँ कि आप लोगों की उपस्थिति में मैं इस वसीयत को पढ़ दूँ ताकि आप लोग इस समय जो भी उचित कार्यवाही हो उसे करें वसीयत की तहरीर है—

मैं अशरफ हुसेन पुत्र श्री अनवर हुसेन, साकिन २०२ रेलवे ट्रैफिक कालोनी नवाब यूसुफ रोड शहर इलाहाबाद का बाशिंदा हूँ।

विदित हो कि मेरी उम्र इस समय ५० वर्ष की है। मैं इस समय उत्तर रेल मे बतौर पेन्सेंजर गाइड काम कर रहा हूँ। सन् १९६० में जब मैं गार्ड था मेरी गाड़ी का एक्सीडेंट हो गया था। उस दुर्घटना में मेरा दाहिना हाथ बिल्कुल बेकार हो गया और वह कंधे से काट दिया गया। मेरी जिन्दगी के ऐसे नाजुक दौर में मुझे अपनी औरत से वह सहारा नहीं मिला जिसकी उम्मीद की जा सकती थी, हाँ मेरे जिस्म के बेलौस हो जाने के कारण मुझे अपनी बीबी से उल्टे-सीधे ताने जरूर मिले। जून सन् १९६५ मे वह मुझ लूले आदमी को छोड़कर पहले अपने बाप के घर चली गयी, फिर वहाँ से कहाँ चली गयी मुझे नहीं मालूम।

ज्ञात हो कि यह खुदा की अपनी मर्जी थी कि मेरी बीबी को मुझसे आज तक कोई सन्तान पैदा नहीं हुई और अब ऐसी स्थिति में कोई उम्मीद नहीं है कि मुझसे उसे कोई औलाद हो। पिछले करीब ४, ५ साल से मुझे गुर्दे की बीमारी हो गई है जिसकी वजह से मैं दिन-प्रति-दिन कमजोर होता चला जा रहा हूँ। चूँकि जिन्दगी का कोई भरोसा नहीं है, ना मालूम किस समय मेरा अन्त आ जाये इसलिए मैं अपनी हार्दिक इच्छा इस वसीयत के द्वारा प्रकट करना अपना फर्ज समझता हूँ। मेरा आधा हिस्सा मकान नं०—२०/१२ मोहल्ला परेड, शहर कानपुर में है, जिसका मैं तनहा मालिक हूँ। आधे हिस्से की मालकिन मेरे छोटे भाई की औरत है, क्योंकि मेरे छोटे भाई अमजद हुसेन पहले ही गुजर चुके हैं। मेरे इस आधे मकान के अतिरिक्त रेलवे के दफ्तर मे मेरा प्रावीडेण्ट फण्ड व ग्रेचुटी का रुपया भी है जिसका फण्ड नं० २५२२० है और जिसकी कुल रकम करीब २०,००० रु० होगी। मौजूदा हालात में मैं अपनी जिन्दगी मे इस दौलत का कोई फायदा नहीं उठा सकता। मेरी इस लम्बी बीमारी में श्रीमती आशा देवी, पत्नी श्री शारदा प्रसाद ने बड़ी हमदर्दी तथा इंसानी मुहब्बत व प्यार से मेरी सेवा की है। मैं इनसे अजहद खुश हूँ और उनका एहसानमन्द हूँ; यही नही, श्रीमती आशा देवी का एक लड़का राजेश है, जिसकी उम्र इस समय करीब ४ वर्ष

है, इस लड़के को अपनी गोद में खिलाकर तथा इसके स्नेह को पाकर बहुत माने में मैंने अपनी औलाद जैसा सुख पाया है, अतः उससे भी मुझे बेहद मुहब्बत व उन्सियत हो गई है। मेरी अन्तिम इच्छा है कि मेरे स्वर्गवासी हो जाने पर मेरे उपरोक्त लिखित मकाननम्बर २०/१२ परेड, शहर कानपुर का आधा भाग तथा मेरे प्राविडेण्ट फण्ड में जमा कुल रुपया पाने की एक मात्र अधिकारी श्रीमती आशा देवी साकिन २०४ रेलवे ट्रेफिक कालोनी, नवाब यूसुफ रोड शहर इलाहाबाद हों। इसके अतिरिक्त मेरे अन्य चल व अचल सम्पत्ति मय घर-गृहस्थी के सामान की भी एक मात्र मालकिन आशा देवी ही होंगी। अगर किन्हीं कारणों से आशा देवी की मृत्यु इन अधिकारों को पाने के पूर्व हो जाती है तो मेरी सारी जायदाद का मालिक आशा देवी का पुत्र राजेश होगा।

यह वसीयत मेरी पहली व आखिरी है, इसके पूर्व मैंने कोई वसीयत नहीं तहरीर व तकमील की है। अगर कोई भी दूसरी वसीयत पाई जाए तो वह ब-मुकाबले इस वसीयत के फर्जी व नाकिस करार पावेगी।

यह वसीयत तथा इसमें लिखी इच्छा को, मैंने खुद बखूबी सोचने व समझने के बाद बिना किसी जब्र या नाजायज दबाव के, ऐन अपनी राजी खुशी व मर्जी से अपने होशो—हवास की दुरुस्तगी में तथा अपना भला-बुरा विचार कर रूबरू गवाहान हाशिया व तारीख हमरोजा ब-हक श्रीमती आशा देवी के नाम तहरीर व तसदीक कर दिया, ताकि सनद रहे और वक्त जरूरत पर काम आवे।

गवाहान (१) गोपालदास
(२) सी० अलबर्ट

अशरफ हुसेन
दस्तखत मुकिर

ड्राफ्टेड बाई—इशरत अली, एडवोकेट, कचहरी, इलाहाबाद।
दिनांक सतरह जुलाई सन् उन्नीस सौ सत्तर [१७-७-७०]
मुकाम—इलाहाबाद, कचहरी।

इशरत अली
दस्तखत, एडवोकेट

गोपालदास ने जैसे ही वसीयत पढ़कर समाप्त की, हुस्ना बेगम रोती हुई चीख पड़ी। ये वसीयत जाली है। इसमें आशा देवी व वकील साहब की साजिश है। मैं इस घर में आशा देवी को पैर भी रखने नहीं दूँगी। वकील साहब आँख फाड़ कर हुस्ना बेगम के तेवर को देख ही रहे थे कि अल्बर्ट ने आते हुए कहा—यह वसीयत सही है। मेरी गवाही में यह अशरफ हुसेन ने इशरत अली एडवोकेट से लिखवायी थी।

—तो इशरत अली खुद यहाँ क्यों नहीं आए ?

—वे जानबूझ कर नहीं आये। उन्हें डर था कि यहाँ मातमपुर्सी में शामिल होने वाले लोग अधिकतर मुसलमान होंगे और चूँकि ये मामला एक मुसलमान की जायदाद का हिन्दू के हाथ में जाने का है और वे खुद भी मुसलमान हैं, अतः लोग उन

पर हाय तोबा मचा कर उनसे पूछ सकते थे कि उन्होंने अशरफ हुसेन को ऐसी वसीयत न देने की राय क्यों नहीं दी। चूँकि वे अपने मुवक्किलों की इच्छाओं पर किसी भी प्रकार की साम्प्रदायिकता थोपना अनुपयुक्त समझते हैं, इसलिए उन्होंने अशरफ हुसेन की इच्छानुसार वसीयत लिख दी और चूँकि वे झगड़े से बचना चाहते थे इसलिए यहाँ नहीं आए।

—तो आप क्यों यहाँ आये ?

मुझे इस वसीयत के मुताबिक आशा देवी को उनका हक बताने के लिये आना जरूरी था।

लोगों ने वकील साहब का उत्तर जैसे ही सुना आशा देवी को वहाँ बुलाने की बात शुरू कर दी। श्रीमती आशा देवी को सूचना दी गयी और उन्होंने वहाँ विस्मयभरी मुद्रा में प्रवेश किया। आशा देवी को देखते ही हुस्ना बेगम ने डपट कर कहा—चली जाओ, इस घर से। खबरदार जो इस घर के एक तिनके पर भी हाथ लगाया।

आशा देवी विस्मय से हुस्ना बेगम को देखने लगीं और वह चिल्लाकर बोली—बड़ी समाज सेविका बनी थी। सर्वोदय की सभा करती थी। मैं कहूँ शारदा बाबू से इसका झगड़ा क्यों होता था। आज खुला 'राज', हरजाई कहीं की। मेरे मियाँ को फांस बैठी।

आशा देवी हतप्रभ होकर अपने कानों में उंगली डाल चुपचाप अपने क्वाटर को लौट गई और गोपालदास उनके पीछे-पीछे क्वाटर में पहुँचे।

वकील साहब के यहाँ से हटते ही अशरफ के घर में उपस्थित लोग तरह-तरह की बातें करने लगे। आशा देवी के आचरण पर बहुतों को शक भी पैदा हो गया। पुरानी बातों का पुलिंदा खोला गया।

× × ×

शारदा प्रसाद और आशा देवी की प्रवृत्तियों में अन्तर होने के कारण प्रायः उनमें झगड़ा हो जाया करता था, और शारदा प्रसाद की तेज आवाज क्वाटर के बाहर भी गूँज जाती थी, किन्तु लोगों को आश्चर्यजनक विस्मय उस दिन हुआ था जब आशा देवी ने दस-दस रुपये के पाँच नोट फाड़ कर क्वार्टर के बाहर फेंक दिये थे और शारदा प्रसाद बीसियों गाली देते हुए अपनी पत्नी को छोड़ देने की धमकी देने लगे थे। शारदा प्रसाद जब से टिकट कलेक्टर से टी० टी० ई० हुये थे, तभी से प्रायः उनके घर पति पत्नी में अनबन सुनाई देने लगी थी, किन्तु उस दिन इतनी जोर का हंगामा हुआ था कि अगल-बगल के सभी लोग वहाँ तमाशाई बनकर इकट्ठा हो गये थे।

आपस की कहा सुनी में बात स्पष्ट हुई कि आशा देवी शारदा प्रसाद द्वारा की गई ऊपरी आमदनी से प्रसन्न होने के बजाय नाराज रहती थीं। उनको अपने सर्वोदयी पिता से संस्कार में सादा जीवन और सेवा वृत्ति की भावना मिली थी और इसीलिये उन्होंने क्रोध में आकर उस दिन की अतिरिक्त आय फाड़कर बाहर फेंक दी थी। शारदा

प्रसाद फटे नोटों के टुकड़ों को अपनी जेब में भर कर क्वाटर के बाहर चले गये थे और लोग हमदर्दी के साथ आशा देवी से सारी बातें जानने को उत्सुक हो गए थे। बातों-बातों में लोगों को मालूम हुआ कि शारदा प्रसाद जी को कुछ शराब पीने की लत पड़ गयी थी और उस दिन वे कुछ अधिक बहक गये थे, उन्होंने अपनी पत्नी के हाथ नोटों की गड्डी रखकर शायद कोई भद्दी गाली बकी थी जिसे आशा देवी लोगों के सामने दोहरा न सकी थीं।

हुस्ना बेगम इस कहानी को ध्यान से सुन रही थी। सुनते-सुनते तपाक से बोली—जो औरत अपने मर्द के जजबातों की कद्र नहीं कर सकती वह गैर की कैसे वफादार हो सकती है। बड़ी आदर्शवादी बनती थी। शारदा प्रसाद के पैसों-पैसों की जब मोहताज हो गई तो बढ़कर गार्ड साहब पर डोरे डाल दिये और यह वसीयत लिखा ली। जरा छूकर तो देखे मेरे घर का एक भी सामान, टांगे तोड़ दूँगी।

—लेकिन वसीयत तो बहुत पहले लिखी गई है और उसकी कापी कचहरी में जमा है।

—अरे वह सब जाली है। असली होती तो वकील साहब की मदद से वह इस घर में ताला लगाकर अपनी कमर में चाबी न लगा लेती। आप लोगों ने देखा नहीं, कि वह बिल्ली की तरह यहाँ आकर दबे पाँव भाग गई।

× × ×

आशा देवी ने वसीयत अपनी आँखों से पढ़ने के बाद वकील साहब से कहा—वसीयत तो पढ़ ली, किन्तु मैं उनकी जायदाद को लेकर करूँगी क्या?

—जायदाद! जायदाद है! यह भी कोई बताने की बात है कि उसका क्या किया जा सकता है। आप जिस दौलत की हकदार हुई हैं उसे फौरन अपने कब्जे में कीजिये। कहिये तो मैं कोर्ट के जरिये पुलिस का इन्तजाम करूँ और आप अशरफ मियाँ की गृहस्थी के ऊपर से हुस्ना बेगम का साया हटाकर........

—नहीं-नहीं मुझे वह गृहस्थी नहीं चाहिये। हुस्ना बेगम देर से ही सही, मगर लौट कर अपने घर तो आ गई है। यही बड़ी बात है। मुझे नहीं पता था अशरफ हुसेन इतने भावुक आदमी थे। उन्होंने कभी मुझसे जिक्र भी नहीं किया कि वे ऐसा कुछ सोच रहे हैं। काश मुझे मालूम हो गया होता तो मैं कभी भी ऐसी वसीयत न लिखने देती।

—लेकिन अब तो बात अशरफ हुसेन की अंतिम इच्छा की है। उनकी आत्मा को क्या इसमें सन्तोष मिल सकता है कि उनकी जायदाद से वह औरत मौज करे जो उनसे बे-वफाई कर उनको उनके हाल पर छोड़ कर चली गई थी।

—लेकिन मैंने जो सेवा की थी क्या इस स्वार्थ के लिये की थी?

—जो भी हो, लेकिन जिस जायदाद के लिये हुस्ना बेगम इतनी बेजार हैं आप उसके प्रति उतनी ही उदासीन क्यों हैं?

—वह तृष्णाओं से खेलती रही है, मैंने तृप्ति अर्जित की है।

—किन्तु यह जायदाद अब सिवा आपके उसे मिल भी तो नहीं सकती। अगर आपने कुछ कार्रवाई न की तो कानून अपनी जगह धरा रह जायगा और हुस्ना बेगम दो-चार दिन में ही उस क्वाटर से अशरफ हुसेन की सारी गृहस्थी उठा ले जायेगी!

—ले जाने दीजिये। वह जूठन मेरे काम की नहीं है।

—लेकिन दो-चार हजार रुपये का तो फरनीचर ही होगा।

—हाँ होगा, किन्तु उसकी उपादेयता मेरे लिये क्या है? मैं यदि उसे अपने घर में लाकर सजा भी दूँ तो क्या वह मेरी अर्जित उपलब्धि होगी?

मैं तो आपको आपके हकों से जानकार कराने, इसलिये तुरन्त आया था ताकि आप हुस्ना बेगम को खबर मिलने से पहले अशरफ मियाँ की गृहस्थी पर.......... लेकिन अब आप जैसा भी सोचें।

—जैसा मैंने आप से पहले कहा, मेरी दृष्टि में उस गृहस्थी का कोई मूल्य नही है, किन्तु रही रुपयों और जायदाद की बात, तो मैं चाहती हूँ कि उस सम्बन्ध मे मुझे कुछ सोचने का समय दीजिये।

—सोचने का समय तो बहुत मिल सकता है, लेकिन आप वसीयत की तहरीर तो नहीं बदल सकेंगी।

....हाँ मैं तहरीर नहीं बदल सकती। लेकिन मैं अपने को भी तो नहीं बदल पा रही हूँ।

....खैर मैंने आपको आपके अधिकारों से अवगत करा दिया और वसीयत की यह कापी भी आपको दिये देता हूँ, बाकी आप समझिये कि आपको क्या करना है। मैं तो समझता हूँ कि आपको फौरन अशरफ हुसेन की जायदाद पर कब्जा पाने के लिये सक्रिय होना चाहिये।

आशा देवी अपने हाथों में वसीयत लेकर विस्मय भरी मुद्रा में कुछ सोचने लगी और एडवोकेट साहब वहाँ से चल दिये।

× × ×

हुस्ना बेगम ने दूसरे ही दिन दो ठेले मँगा कर अशरफ हुसेन की सम्पूर्ण गृहस्थी लदवायी और सशंकित मुद्रा के साथ आशा देवी के क्वाटर के आगे से चलने लगी। आशा देवी ने सामान के साथ उसे जाते देखा किन्तु वे कुछ बोली नहीं।

दो तीन दिन बाद हुस्ना बेगम आशा देवी के क्वाटर में आई और बोली—वसीयत की नकल क्या आप मुझे देंगी?

—अगर मैं तुम्हें दे भी दूँ, तो तुम्हारा क्या लाभ होगा?

—आप उसे मुझे दे दीजिये, लाभ हानि तो मैं समझ लूंगी।

—क्या तुम उसे बदल सकती हो?

—मैं इस बारे में अपने वकील से राय लेना चाहती हूँ।

राय तो वैसे भी ले सकती हो, लेकिन मेरे विरुद्ध कार्रवाई करने के लिये तुम मुझी से वसीयतनामे की कापी चाहती हो ?

—वह इसलिये कि आप ने कल मुझे अपने मियाँ की गृहस्थी ले जाने में कोई झगड़ा पैदा नहीं किया, शायद आप मेरे हकों को समझ गई हैं।

तुम्हारी धारणा गलत है। किसी भी हक को पाने के लिये इन्सान को अपना फर्ज भी अदा करना पड़ता है।

—यह मेरा निजी मामला है।

—निजी मामला है तो फिर मेरे पास क्यों आई हो ?

—तो तुम जायदाद के लिये झगड़ा खड़ा करोगी ?

—झगड़ा खड़ा करने की बात मेरी ओर से नहीं है। झगड़ा करने की बात तो तुम सोच रही हो। तुम्हें यदि वसीयत की कापी दे भी दूँ तो तुम्हारे हाथ कुछ नहीं आने का।

—अगर ऐसा ही है तो उस कापी को दे क्यों नहीं देतीं ?

—तुम्हारी समझ को मैं क्या कहूँ। लो, ले जाओ वसीयत की प्रति। आशा देवी ने अपनी मेज की दराज से वसीयत निकाल कर फेंक दी और हुस्ना बेगम यूँ उठाकर भागी जैसे उसने अशरफ हुसेन की सारी जायदाद पा ली हो।

× × ×

—उस दिन शारदा प्रसाद आशा देवी से लड़कर जो गये थे तो पन्द्रह दिन तक घर नहीं लौटे थे। बीच के समय में अशरफ हुसेन की मृत्यु हो गई और उनकी वसीयत की बात रिंगते-रिंगते शारदा प्रसाद के कानों में भी पहुँची। वे यह सुनकर आश्चर्य चकित हो गए कि अशरफ हुसेन ने अपनी सारी जायदाद उनकी पत्नी के नाम लिख दी है। वे तुरन्त अपने क्वाटर पहुँचे और—

—अशरफ हुसेन क्या मर गए ?

—हूँ।

—कैसे ?

—बीमार तो थे ही।

—लेकिन, लेकिन उन्होंने अपनी वसीयत क्या तुम्हारे नाम लिखी है ?

—हाँ।

—क्यों ?

——मैं क्या बता सकती हूँ। मुझे तो बस उसी दिन मालूम हुआ जब वकील साहब ने यहाँ आकर सुनाया।

—तुम मुझसे नाटक करती हो, तुमने अब तक मुझे मूर्ख बनाया। तुम्हारे और उसके पुराने सम्बन्ध थे।

—यह आप कितना घृणित लांछन मुझ पर लगा रहे हैं ?

—लांछन ! मैं कहता हूँ वह तुमको अपनी ३०,००० रु० की जायदाद क्या केवल अपने हाथ सहलाने के लिये दे गया है ?

—क्या आपने वसीयत पढ़ी है ?

—मैंने नहीं पढ़ी, मगर लोगों ने मुझे ताना मारकर सब बता दिया है ।

—क्या ताना मारा है ?

—यही, कि बेटा पन्द्रह साल में जो कमाई नहीं कर सके, तुम्हारी बीवी ने पन्द्रह दिन में कर ली ।

—लोगों ने कहा, और आपने उनके ताने ओढ़ लिये । क्या आप उन्हें डाट कर चुप नहीं कर सकते थे ? क्या आप को मुझ पर इतना विश्वास नहीं ? और फिर पत्नी पर विश्वास न रखना क्या अपने पुंसत्व पर आशंका नहीं ? अगर आपको अपने पर विश्वास नही तो आपको मुझ पर अविश्वास करने का भी अधिकार नही । आशा देवी दृढ़ता से पति के प्रश्नों का उत्तर देने के बाद कुछ क्षण मौन रहीं फिर धीरे से बोलीं—आखिर क्योंकर मैं उस अपाहिज पर आसक्त हो सकती थी । पैसे के लिये ? क्या आप कम पैसा पैदा करते हैं ? कम से कम मेरी आवश्यकताओं के लिए तो पर्याप्त है ही । यदि मैं आपकी अपनी असली कमाई से तृप्त न होती तो क्या उन पचास रुपयों को फाड़ कर फेंक सकती थी ? मैं अपनी दाल, घी डाल कर खाती हूँ । बड़ा से बड़ा रईस भी मोती पिसवा कर नहीं खाता, वह भी गेहूँ की रोटी खाता है और मैं भी गेहूँ की ही रोटी खाती हूँ । आपकी कमाई से ही रुचि अनुसार पहन भी लेती हूँ । मुझे क्या जरूरत है कि थोड़े से पैसे के लिए अपनी या आपकी मर्यादा बेचूँ !

—लेकिन तीस हजार की रकम बहुत बड़ी होती है, अच्छे-अच्छे लोगों की नीयत डोल जाती है, फिर उसने अपना आधा मकान भी तो तुम्हीं को लिखा है ।

—यह उसकी नितान्त भावुकता है । मैं इसके लिये क्या कर सकती हूँ ।

—तुम इसके लिये कुछ नही कर सकती तो मैं इसके लिये क्या करूँ कि लोग मुझसे यह न कहें कि जो कमाई तुम पन्द्रह साल में नहीं कर सके तुम्हारी बीवी ने पन्द्रह दिन में कमा ली ।

—आप फिर वही बात दोहरा रहे हैं ।

—हाँ, हाँ मैं फिर दोहरा रहा हूँ ।

—मैं चाहती थी कि वह वसीयत आपको पढ़ा देती तो बात साफ हो जाती लेकिन........ ।

—अब उसे तुम्हीं पढ़ो और उस पर अमल करो । मैंने पैसे से मोह जरूर किया है किन्तु इस कीमत पर नहीं की कोई मेरी औरत को खरीद ले ।

इसके पहले कि आशा देवी आगे कुछ बोले शारदा प्रसाद एकदम झटके के साथ क्वाटर से बाहर हो गए और आसमान पर ताकते हुए दूर चले गए ।

दूसरे दिन आशा देवी सोच रही थीं कि वे इस समस्या को कैसे सुलझावें ! वे इस वसीयत की जायदाद से मुक्ति पाना चाहती थीं, किन्तु हुस्ना बेगम को भी उससे वंचित रखना चाहती थीं । अचानक उनके घर कुण्डी खड़की । उन्होंने द्वार पर काली शेरवानी पहने एक सज्जन को देखा । द्वार खोलने पर उन्होंने बताया कि वे इशारत अली एडवोकेट हैं ।

परिचय पाते ही आशा देवी ने उन्हें अन्दर बिठाया । अन्दर बैठते ही वे बोले—गोपाल दास जी से ज्ञात हुआ कि आप उस वसीयत को गम्भीरता से शायद स्वीकार नहीं कर रही हैं ।

आशा देवी कुछ सोचते हुए बोलीं—किन्तु वसीयत तो वसीयत है, उसके लिये स्वीकार करने या न करने की बात मैं क्या कर सकती हूँ । हाँ यह बात जरूर है कि मैं उसे ग्रहण करती हुई भी कुछ अपनी इच्छा प्रकट करना चाहती हूँ और उसको कानूनी जामा पहनाने का काम आपका होगा । मैं आपको इस केस की जो भी फीस होगी अदा करूँगी ।

इशरत अली ने एक नजर ऊपर से नीचे तक आशा देवी को देखा और बोले—आखिर आप लिखाना क्या चाहती हैं ?

—मैं चाहती हूँ कि आप मेरी घोषणा लिखें कि मैंने जनाब अशरफ हुसेन की वसीयत पूरी पढ़ ली है । मैं चाहती हूँ कि आप यह लिखें कि मैंने अपनी मर्जी से हुस्ना बेगम को अशरफ हुसेन की सारी गृहस्थी ले जाने दी है । मैं चाहती हूँ कि आप लिखें कि मैं अशरफ हुसेन साहब के उस आधे मकान को जो कानपुर में है, अपनी मर्जी से अशरफ हुसेन के स्वर्गीय छोटे भाई की विधवा पत्नी के हक में देना चाहती हूँ । मैं चाहती हूँ अशरफ हुसेन के प्राविडेण्ड फण्ड व ग्रेच्युटी का सारा पैसा किसी न्यास के अन्तर्गत स्टेट बैंक में जमा कर दिया जाय और उसकी सालाना आय से उन कुछ गरीब लड़कों को पढ़ने की किताबें उपलब्ध कराई जायें जिनका कोई संरक्षक न हो ।

इशरत अली ने सिर झुका कर कहा—मैंने गोपाल दास से जो संकेत पाया था, वह बिलकुल सही निकला । किसी एडवोकेट को किसी मुवक्किल के घर जाकर उसकी समस्या सुलझाने की फुर्सत नहीं होती, लेकिन यहाँ मैं इसीलिये आया कि मैं खुद आपको समझ सकूँ ।

वे इतना कहते हुये धीरे से उठे और बोले—इसका ड्राफ़्ट दो-तीन दिन में वाटरमार्क पेपर पर टाइप करवा कर आपको भेज दूँगा । आपके पास तीन प्रतियाँ आयेंगी, आप उन पर अपना दस्तखत कर दीजियेगा । रही कोर्ट-फीस आदि की बात तो वह आपको देने की जरूरत नहीं । मैं खुद सब निपट लूँगा । मैंने तो आज के युग में ऐसा आदमी नहीं देखा । आपके बड़प्पन की दाद देता हूँ ।

× × ×

कागजों के ऊपर आशा देवी के हस्ताक्षर होने के तीसरे दिन स्थानीय दैनिक

में पूरे विवरण के साथ अशरफ हुसेन की वसीयत तथा आशा देवी की घोषणा प्रकाशित हुई। दैनिक समाचार की प्रति शारदा प्रसाद जी के हाथ भी लगी और वे आशा देवी की घोषणा पढ़ कर दंग रह गये।

उन्होंने अपने हाथों अपने गाल पर थप्पड़ मारे और एक मुजरिम की तरह अपनी पत्नी के आगे आकर ऐसे खड़े हो गये मानों कह रहे हों—मुझे माफ कर दो, मैंने तुम्हें अभी तक नहीं पहचाना था। आज से ऊपर का एक पैसा भी पैदा नहीं करूँगा। ☐

मंदिर, मंसूर का

पं० चंद्रभाल बाजपेयी ने बीस साल की एडवोकेटी के बाद एक सुन्दर सा बंगला बनवाया। बंगले का एक भाग केराए पर उठाने के विचार से उन्हों ने उस भाग को जरा अच्छे ढंग से फिनिश करवाया। बाजपेयी जी पुराने ढंग के आदमी थे। स्वयं के रहने के लिये अधिक चमक दमक की आवश्यकता नहीं समझते थे। सनातन धर्म के पूर्ण अनुयायी होने के कारण उनके यहाँ पूजा पाठ और मंत्र उच्चारणादि समयानुसार अवश्य होता था। उनका लड़का जो प्रयाग विश्वविद्यालय के बी० ए० के प्रथम वर्ष में पढ़ रहा था, अपने घर के पंडिताऊ वातावरण और प्रतिक्षण जातीय श्रेष्ठता के साथ ऊँच-नीच और छूआ-छूत से बहुत ऊबता था। अत: पिता और पुत्र में कम ही पटती थी। पुत्र ने अपना नाम राम अधार बाजपेयी से परिवर्तित कर स्वदेश बन्धु रख लिया था। बाजपेयी जी उसके इस कार्य से बहुत ही असंतुष्ट थे किन्तु फिर करते क्या? आखिर तो वह उनका पुत्र ही था।

एक दिन स्वदेश बन्धु ने अपने पिता को बताया कि बँगले के लिए केरायेदार वह ढूँढ़ लाया है। पं० चंद्रभाल ने पूछा कितना केराया मिलेगा। स्वदेश बन्धु बोला,—'जितना आप चाहते थे, केरायेदार कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। गजटेड ऑफिसर है।' बाजपेयी जी ने प्रसन्न होते हुए पूछा—'क्या नाम है उनका?' स्वदेश बन्धु झिझकता हुआ बोला,—'मौलाना मन्सूर आलम।' बाजपेयी जी की त्यौरियाँ चढ़ गईं, बोले,—'मन्सूर आलम! यानी केरायेदार मुसलमान है, म्लेच्छ का सहवास बाजपेयी के के साथ?'

तो क्या हुआ, क्या वे इन्सान नहीं होते? फिर वे तो आपसे बहुत अलग केराये वाले भाग में रहेंगे। सहवास का प्रश्न ही नहीं उठता।'

'सहवास का बच्चा, पूरा बंगला भ्रष्ट करा दूँ क्या? मैं ऐसा केरायेदार नहीं चाहता।'

'लेकिन आपको इतना केराया कौन देगा?'

'सौ दफे जिसे गरज होगी देगा। मैं ऐसा केरायेदार नहीं चाहता बंगला खाली भले ही पड़ा रहे।'

'लेकिन मैंने उन्हें वचन जो दे दिया है?'

'कुछ सही, कह दो कि मुसलमानों को बाजपेयी जी बंगला देना नहीं चाहते।'

यह आप क्या कह रहे हैं एक एडवोकेट के द्वारा संविधान का इतना बड़ा उल्लंघन तो नहीं होना चाहिये।'

'संविधान के चाचा, मैं पाकिस्तान बनाने वालों से नफ़रत करता हूँ। बँगला केराये पर नहीं उठाना है!'

'किन्तु इसमें मेरी मान-हानि है। मैं इस तरह से उन्हें नहीं मना कर सकता।'

'नहीं मना कर सकते तो फिर घोट दो मेरा गला। बना लो एक पाकिस्तान यहाँ भी। इस बंगले में भी। अपनी जाति बिरादरी का केरायेदार होता तो बच्चों का और सभी का उस घर से आना जाना होता। कौन जायगा उन मौलाना के घर?'

'व्यवहार तो बढ़ाने से बढ़ता है।'

'अच्छा बाबा जो मन में आये सो करो। मुझे क्या है चार दिन की जिन्दगी और काटनी है। काट लूंगा। भारत में धर्म-कर्म अब समाप्त ही होने को है।'

'लेकिन मानवता के सम्बन्ध और भी मजबूत हो रहे हैं।'

'ठीक है हम लोग तो जैसे कुछ समझते ही नहीं। चार दिन से विश्वविद्यालय में पढ़ने लगे, बड़े राजनीतिक और विधानाचार्य बन गये है।'

स्वदेश बन्धु ने आगे कुछ भी न बोलते हुये घर से चल देना उचित समझा।

× × ×

मौलाना मन्सूर आलम, बाजपेयी जी के केरायेदार बन ही तो गये। नमाज के वे बड़े पक्के थे। सुबह शाम बिना नमाज पढ़े उन्हें चैन नही आता था। शुक्रवार के दिन प्राय: नमाज और बाजपेयी जी के घर में माधो-मंदिर की पूजा एक समय पर ही होती। मौलाना साहब जब माथा जमीन पर टेककर दुआ मांगते तो पंडिताईन उसी समय जोरों से घंटा बजातीं। दोनों ही ईश्वर को याद करते किन्तु एक का मुख पूर्व होता तो दूसरे का पश्चिम। मौलाना साहब के एक लड़का था सलीम, जो पाँच वर्ष का था। लड़की रशीदा युवा अवस्था में थी, लगभग १७ वर्ष की। मन्सूर साहब की बेगम लगभग ४० की थीं और उन्हें दिल की धड़कन की शिकायत थी। मन्सूर साहब प्राय: दौरे पर जाते तो स्वदेश से घर की निगरानी के लिये कह जाते। रशीदा को रहते ३ महीने हो गये थे फिर भी स्वदेश एक बार भी उसे न देख पाया था। पर्दा की अधिकता के कारण बेगम साहब की भी झलक कभी ही मिल पाती थी।

एक दिन मन्सूर साहब रशीदा के विवाह के चक्कर में बाहर गये हुये थे। रात के सन्नाटे मे लगभग दो बजे बेगम साहब को अपने घर में कुछ भड़भड़ाहट सुनाई दी। बेड स्वीच के दबाते ही कमरे की बिजली जली और उन्होंने दो आदमियों को नकाब पहने देखा। वह चिल्ला उठी—या अल्लाह, चोर चोर—और इसी दम उनके मुंह पर हाथ रखते हुये एक चोर ने कहा—'चुप, आवाज न निकले नहीं तो गला घोट दिया जायगा।' इस शोर-गुल में रशीदा की भी आँख खुली और वह एक-दम से उठ

कर चिल्लाते हुए बाहर भागी,—'स्वदेश बंधु, स्वदेश बंधु, बचाओ।' स्वदेश के कानों मे अचानक यह आवाज टकराई और वह जल्दी ही अपना तमन्चा उठाकर रशीदा के घर में घुसता हुआ जोर से बोला,—'कौन है घर में ? एक एक को भून दिया जायगा।'

अच्छे खासे जवान के हाथ में पिस्तौल देखते ही चोरों की हिम्मत छूट गई और वे जिस रास्ते से आये थे उसी से तुरन्त भाग निकले। स्वदेश ने उनको भागते देखा और फिर देखा रशीदा को। सुन्दर चाँद सा मुखड़ा पूर्ण यौवन की मादकता। कुछ देर वह देखता ही रह गया। रशीदा ने बुरके को कंधे से ओढ़ते हुए कहा अम्मी जान को देखिये उनका क्या हाल है। स्वदेश ने उधर जब देखा तो रशीदा की अम्मी बेहोश हो चुकी थीं। अब एक ओर चारपाई के स्वदेश बैठा था और दूसरी ओर रशीदा। पानी के छींटें दे दे कर रशीदा ने अम्मी की मूर्छा दूर करने का प्रयास किया और स्वदेश ने उन्हे हिलाना डुलाना शुरू किया। कुछ देर में बेगम साहबा को होश आया तो स्वदेश को देखकर बोलीं—'तुमने अपनी नकाब उतार दी क्या ?' रशीदा ने कहा, 'अरे आप तो स्वदेश बन्धु हैं। बाजपेयी जी के लड़के।'

'स्वदेश !' बेगम बोलीं, 'अरे हाँ आप तो स्वदेश हैं, स्वदेश बन्धु ! बेटा, मेरा दिल बड़ा कमजोर है अभी मैंने ख्वाब देखा कि मेरे घर में चोर घुसे—'

'ख्वाब नहीं अम्मीजान' रशीदा बोली,—'वाकया था'—'वाकया था ?' बेगम ने घबड़ा कर पूछा, 'तो फिर वे चोर कहाँ भाग गये ?'

'वे तो भाग गये' स्वदेश ने कहा, 'मेरे आते ही वे भाग गये। यह अच्छा ही हुआ रशीदा ने मुझे बुला लिया।'

'खुदा का शुक्र है जो तुमने रशीदा की आवाज सुन ली। पंडित जी तो कभी भी शायद मेरे काम नहीं आते। अच्छा बेटा मेरा डर अभी खत्म नहीं हुआ है। अच्छा हो तुम अब यहीं सो। मैं दूसरा पलंग बिछाये देती हूँ। या खुदा अब रात कैसे कटेगी।'
—'अब आप घबड़ाईये नहीं।'—स्वदेश ने कहा।

रशीदा बात ही बात में एक नया बिस्तर ले आई और ज्यों ही उसने उसे चारपाई पर रखा स्वदेश बन्धु ने दौड़कर अपने हाथ से बिस्तर खोला। रशीदा हट गई और कृतज्ञता भरी दृष्टि से स्वदेश की ओर देखने लगी। स्वदेश की निगाहें चार हुईं किन्तु शीघ्र ही उसने अपनी पलकों को नीचे करते हुये कहा,—'अब आप लोग सो जाइये। मैं भी आराम करूँगा।'—स्वदेश चारपाई बिछा कर तुरन्त उस पर लेट गया। रशीदा न जाने क्यों स्वदेश के इस निःसंकोच स्वभाव पर विस्मय करने लगी कमरे की बिजली जल रही थी। बेगम साहब बेसुध अवस्था में आँख बन्द किये पड़ी थी और अब रशीदा को भी लेटना पड़ रहा था। वह अपने पलंग पर जाकर बैठ गई। स्वदेश चुप पड़ा उसकी आहट लेता रहा। रशीदा कुछ देर बैठने के बाद लेट भी गई किन्तु उसे नींद न आई। स्वदेश ने करवट लेकर देखा वह उसकी ओर करवट करे पड़ी है। उसने आँख बन्द की और फिर थोड़ी देर बाद जब फिर आँख खोली तो देखा वह

एक टक उसे देख रही है। स्वदेश की आँख खुलते देखते ही वह कसमसाई और उसने आँख बन्द कर ली। स्वदेश उसकी ओर देखता ही रहा और उसने देखा कि थोड़ी ही देर में रशीदा ने फिर आँख खोल कर उसे देखा। आँख चार होते ही स्वदेश के मुस्कराहट आई और बोला,—नींद नहीं आ रही है क्या ?' रशीदा ने चादर ओढ़ते हुये कहा—'डर लग रहा है। नींद आ जायगी। आप सोते क्यों नहीं ? स्वदेश बोला—मैं तो घर ताक रहा हूँ।' और रशीदा ने हँस कर कहा—और मैं घर ताकने वाले को ताक रही हूँ।' इसी समय कमरे की ओर किसी के आने की आहट सुनाई दी। स्वदेश ने कड़ककर पूछा,—'कौन है ?' कमरे में प्रवेश करते हुये, स्वदेश की माँ बोलीं, 'मैं हूँ, तू यहाँ पड़ा है और मैं सोच रही हूँ कि अब तू आता है और तब।' स्वदेश घबड़ा कर उठ बैठा। रशीदा ने गहरी नींद का बहाना किया। स्वदेश की माँ ने पूछा,—'क्या बात थी, कैसा शोर गुल था ?' स्वदेश ने बाहर की ओर इशारा करते हुये, कहा,—'चोर आये थे।' चोरों का नाम सुनते ही वह चौंक उठीं। स्वदेश आगे बोला, 'वे तो भाग गए अब घर की तकवाही कर रहा हूँ।' उसकी माँ ने कहा, 'अजीब आदमी हो।' इतना कह कर वह वहाँ से तुरंतचली गयी। स्वदेश बन्धु ने करवट बदली और चुप लेट कर रात काट दी। सुबह जब उठा तो रशीदा गहरी निद्रा में थी। वह घर आया। घर में पैर रखते ही उसकी माँ ने कहा, 'लोटे में गंगा जल रखा है। अपने ऊपर छिड़क ले। पवित्र हो जा।' स्वदेश ने माँ की बात टाल दी और वे बड़बड़ाती रह गईं।

बाजपेयी जी सोकर उठे और जैसे ही दालान में पैर रखा उन्होंने पत्नी से चोरी का समाचार सुना। वे बोले, 'मैं कितना बे-खबर सोता हूँ ! स्वदेश तुमने मुझे जगाया क्यो नही ?' स्वदेश कुछ नहीं बोला और उसकी माँ ने कहा, 'आपको जगाते तो रात भर केरायेदार के यहाँ सोने को क्यों मिलता। रातभर वहाँ रहा है और मैंने कहा कि गंगा जल छिड़क कर पवित्र हो जाओ तो....' इसी बीच स्वदेश ने कड़क कर कहा, 'मुझसे यह नहीं होने का।'

'तुझसे कहाँ हो सकता है, म्लेच्छ कहीं का' बाजपेयी जी क्रोध से बिगड़ कर रह गए।

शाम को मौलाना मन्सूर आलम बाहर से लौट कर घर आए तो उन्हें सारा हाल विदित हुआ। उन्होंने स्वदेश बन्धु को सैकड़ों दुआएँ दीं और दूसरे ही दिन दावत रखी। स्वदेश ने दावत स्वीकार की, किन्तु माँ की जिद ने उसे दावत खाने न दी।

दिन बीतते गये। मन्सूर साहब एक दिन दो मुर्गियाँ और एक बढ़िया मुर्गा खरीद कर लाये। सलीम को मुर्गा बहुत पसन्द आया। शाम का समय था। मन्सूर साहब ने नमाज़ की चटाई बिछाई और उधर बाजपेयिन जी ने पूजा प्रारम्भ की। शंख की आवाज सुनते ही सलीम बिना कुछ सोचे समझे मुर्गे को गोद में दबाये हुये बाजपेयी जी के घर में घुस गया। उसे पूजा देखने की तीव्र उत्कण्ठा थी। वह नित्य ही सोचता

था पूजा कैसे की जाती है। सलीम निःसंकोच ठाकुरद्वारे में पहुँच गया। उसने देखा बाजपेयिन जी आँख बन्द किये हैं और मुंह से कुछ धीरे-धीरे कह रही हैं। सामने एक छोटी सी, संगमरमर की मूर्ति है। मूर्ति के हाथ में बाँसुरी है और वह बहुत ही सुन्दर खिलौना सी लग रही है। सलीम मूर्ति की सुन्दरता पर मुग्ध हुआ और उसके हाथो का बन्धन ढीला हुआ। इसी समय मुर्गे ने पर फड़-फड़ाये और कू-कू-कू कर के वह देवालय के अन्दर बीसियों चीजों को गिराता हुआ बाहर भागा। बाजपेयिन जी ने आँख खोलकर देखा तो सलीम सामने खड़ा दिखाई दिया और मुर्गा देवालय के बाहर जा रहा था। बाजपेयिन के क्रोध का ठिकाना ही न रहा। उठने के साथ ही दो चाटे सलीम के जड़ दिये। सलीम जोरों से रोता हुआ भागा और अपने घर पहुँचा। मन्सूर साहब ने जब रोने का कारण पूछा तो सलीम ने मुर्गे की शिकायत कर दी। मन्सूर साहब उसके भोले पन पर मुस्करा पड़े और बोले मुर्गा तो बड़ा बदमाश है लेकिन तुम वहाँ पूजा के स्थान पर क्यों गये ? सलीम बोला—भगवान को देखने। अम्मीजान रोज मुझे बताती थीं की हिन्दू लोग भगवान की पूजा करते हैं और मैंने आज तक भगवान नहीं देखे थे। मन्सूर साहब ने मीठी डाँट से कहा,—'अच्छा हुआ मार पड़ी। अब कभी पंडितायिन के यहाँ न जाना।' सलीम उदास होकर बैठ गया।

इधर घर में स्वदेश जब शाम को घर लौटा तो पैर रखते ही उसकी माँ बोली, आज ही हमारे मकान से इन मुसल्लों को निकालो।'

'क्यों क्या हुआ ?' स्वदेश ने पूछा।

'हुआ क्या ? सारा ठाकुरद्वारा अपवित्र हो गया। वह सलीम का बच्चा, पता नहीं कहाँ से मुर्गा ले आया और घुस आया कमरे के अन्दर। मैं ध्यानमग्न थी और उसने मौका पाकर मुर्गे को कृष्ण की मूर्ति पर छोड़ दिया। कमबख्त कू-कू-कू कर के सारी पूजा सामग्री और बर्तनों को भ्रष्ट कर गया। भगवान जाने नर्क में भी मुझे जगह मिलेगी या नहीं।'

'मुर्गा कहाँ से आया ?'

'आया कहाँ से, मैं क्या जानूँ ! लाये होंगे मन्सूर साहब। उनको क्या है। हिन्दू की गाय और मुसलमान का मुर्गा एक सा पालतू जानवर है। गंदा जानवर कूड़ा खाने वाला, कमबख्त धर्म ही भ्रष्ट कर गया।'

'धर्म भ्रष्ट कर गया ?' स्वदेश ने विस्मय से पूछा।

'और क्या, अब तो मूर्ति भी बदल देनी होगी।'

'क्या धर्म इतना कोमल है कि जरा से मुर्गे से भ्रष्ट हो गया ?'

लो और क्या चाहिये। मुसलमान का मुर्गा देवालय में घुस आये और धर्म बना रहे ! अरे इसी से तो सत्यानाश हुआ है, छूत-छात को तो आज के लड़के मानते ही नहीं।'

'अच्छा आज एक बात पूछूंगा, बताओगी ?'

'एक नहीं दस बात पूछो। पंडित की लड़की हूँ। मैंने गोस्वामी जी की रामायण सात बार समाप्त की है। पुराण, रामायण, सुखसागर, प्रेम-सागर, दुर्गा पाठ, हनुमान चालीसा, गायत्रीमंत्र और महाभारत सब श्रवण किया है; मुझसे क्या छूटा है। पूछो जो पूछना है।'

'मुझे यह बताओ कि तुम्हारे कृष्ण की शक्ति अधिक है या इस मुर्गे की ?'

'अरे ! मुझे बिल्कुल उल्लू समझता है क्या ? कृष्ण के आगे मुर्गे की क्या बिसात !'

'तो फिर कृष्ण का प्रभाव अधिक होगा या मुर्गे का ?'

'कृष्ण का, गोवरधनधारी का।'

'तो मुर्गे ने यदि कृष्ण को छू लिया तो कृष्ण पर मुर्गे का प्रभाव कैसे पड़ गया ? वह अपवित्र कैसे हो गये। मैं तो समझता हूँ कि कृष्ण का तो कुछ नहीं बिगड़ा, हाँ मुर्गा अवश्य पवित्र हो गया होगा।'

'अरे क्या बकता है, मुझे उल्टा समझाने चला है। मेरी ही कोख से जन्मा और मुझी को उल्टी पट्टी पढ़ाता है। मुर्गा पवित्र हो गया ! हाँ बड़ा आया है अपने केरायेदार का पक्ष लेने। रहने दे, मैं तुझसे बात करना भी पाप समझती हूँ। कल ही मन्सूर के मुर्गों को और उनको निकलवा न दिया तो मैं ब्राह्मण की जन्मी नहीं। चला है मुझसे बहस करने।'

स्वदेश ने देखा—माँ का क्रोध बहुत बढ़ गया है। वह उसी दम घर के बाहर चल दिया।

दिन बीतते गये। एक दिन स्वदेश ने मन्सूर साहब के मुँह से सुना कि रशीदा की शादी तय हो गई है। लड़का बम्बई में बड़ा भारी व्यापारी है। मरीन ड्राइव पर उसकी एक कोठी है। स्वदेश को यह समाचार सुनकर कुछ झटका सा लगा। उसे उसी समय रशीदा का चंद्रानन याद आया। उस चोरी वाली घटना की रात की बात और फिर उसके बाद से शरमाई आँखों से कभी कभी उसका साक्षात्—चलचित्र के समान उसके मानसपटल पर तैरने लगा। ऊपर से प्रसन्न मुद्रा बनाकर बोला, 'अच्छा समाचार सुनाया आपने। खुदा का शुक्र है ऐसे शुभ दिन आये।'

रशीदा का विवाह बड़ी धूम-धाम से हुआ। बम्बई के रईस मुसलमानों की बारात और बाराती, सभी मन्सूर साहब के गौरव के पात्र हुये। रशीदा की बिदाई हुई और साथ में स्नेह की डोरी से बँधा हुआ सलीम भी अपनी बहन के साथ बम्बई घूमने चल दिया।

एक महीना बीता था कि मन्सूर साहब ने रशीदा को और सलीम को बुलाने का इरादा किया। उन्होंने पहले तो स्वयं बम्बई जाना चाहा किन्तु, फिर कुछ सोच कर वे स्वदेश से बोले, 'बेटा बम्बई घूमना चाहते हो ?'

'हाँ, हाँ इससे बढ़कर क्या बात है।'

'अच्छा तो तुम रशीदा को ससुराल से विदा करा लाओ। सलीम को भी लेते आना। उसका मन ऊब रहा होगा।'

तीन चार दिन बाद स्वदेश बम्बई के लिये तैयार हुआ और माँ के लाख मना करने पर भी वह बम्बई देखने का अवसर न छोड़ सका। चलते समय मन्सूर साहब ने मिठाई और मेवे की पिटारियाँ साथ करते हुये कहा,—देखो यदि रशीदा को रुखसत तुम्हारे साथ वे लोग न करें तो ज्यादा जिद करने की जरूरत नहीं है। सिर्फ सलीम को ही लेते आना।

स्वदेश ने शीघ्रता से सिर हिलाया और मन्सूर साहब को नमस्ते कर के बम्बई की गाड़ी पकड़ने चल दिया। काशी एक्सप्रेस से वह बम्बई के दादर स्टेशन पर पहुँचा। स्टेशन के बाहर आते ही बम्बई की कोठियों की रंग-बिरंगी रोशनी ने उसे यह बताना शुरू किया कि यह बम्बई है। उसने एक टैक्सी की और जल्द ही मरीन ड्राइव पहुँच गया।

प्रातः जब स्वदेश चाय पीने बैठा तो सलीम दिखाई दिया। सलीम ने भी स्वदेश को देखा और तेजी से भाग कर आया। विस्मय से बोला—स्वदेश भाई आप आ गये ! अब मैं आपको यहाँ से जाने नहीं दूँगा। सलीम ने एक ही सांस में इतनी बातें कर डालीं, और स्वदेश ने उसको पकड़ कर बगल की कुर्सी पर बिठा लिया। सलीम ने पूछा,—'अब्बा जान भी आये हैं ?'

'नहीं उन्होंने तुम्हें बुलाया है ?'

'मुझे ? और आपा को ?'

'उन्हें भी बुलाया है ?'

'अच्छा तो मैं आपा को खबर कर आऊँ',—सलीम चलने को हुआ तो स्वदेश ने हाथ पकड़ कर उसे रोकते हुए कहा, 'अभी रुको, चाय पी लो तो अन्दर जाना।' सलीम रुक गया। चाय आई और सलीम ने उसका केवल एक घूँट पी कर कहा,—मैं चाय पी चुका अब जाता हूँ, आपा को खबर करने। वह तेजी से भाग गया। स्वदेश चाय पीता रहा और तभी सलीम फिर आया और बोला, 'वह सामने देखिये क्या है।' स्वदेश ने मुस्करा कर उस ओर देखा तो सलीम बोला, 'नहीं मालूम ? यह समुद्र है। मैं इसे यहाँ रोज देखता हूँ।' स्वदेश ने सिर हिलाया और बोला,—'मुझे बम्बई घुमाओगे ?' सलीम ने कहा,—'हाँ हाँ अभी चलिये। स्वदेश ने नाश्ता समाप्त किया और फिर सलीम को साथ लेकर वह कुछ दूर घूमने चल दिया।

सलीम और स्वदेश इधर उधर घूमते रहे। अचानक उनकी दृष्टि एक संगमरमर की दूकान पर पड़ी। स्वदेश ने सोचा—सलीम को एक अच्छा सा कोई खिलौना ले दिया जाय। वह सलीम को लेकर दूकान में घुसा। सलीम ने देखा सैकड़ों खिलौने सजे हुये हैं। स्वदेश ने पूछा, क्या लोगे। सलीम ने कहा,—'कुछ नहीं।' स्वदेश बोला, 'नहीं मन की बात कहो। देखो वह दो कूबड़ का ऊँट है, लोगे ?'

'नहीं, वह नहीं।'

'तब कौन चीज लोगे ? स्वदेश ने पूछा और सलीम ने दूर तक अपनी दृष्टि दौड़ा कर कहा,—'वह देखिये बाँसुरी वाला, बिल्कुल आपके यहाँ जैसा है। मुझे वही ले दो।'

'नहीं वह तुम्हारे काम की चीज नहीं है।'

'लेकिन मुझे तो वह ही अच्छा लग रहा है, कैसा सुन्दर वह बना है।'

'लेकिन वह तो पूजा करने की चीज है, तुम और कुछ ले लो।'

'नहीं मैं बाँसुरीवाला ही लूँगा। अम्मी जान कहती थीं पंडितायिन भगवान की पूजा करती हैं और उस दिन जब मैं ऐसे ही भगवान को देख रहा था तो मेरे हाथ से मुर्गा छूट गया था। मुझको उन्होंने दो चाँटे मारे थे। आज मैं इसे जरूर लूँगा और मेरे भगवान को देखने जब पंडितायिन जी आवेंगी तो मैं भी उन्हें अपने घर से निकाल दूँगा।'

'अच्छा यह बात है, लेकिन तुम्हारे अब्बा कभी भी इसको तुम्हारे पास सह नहीं सकते।'

'क्यों ?'

'यह तुम्हारे समझ में अभी नहीं आने का, तुम और कोई खिलौना ले लो।'

'तब तो मैं कुछ नहीं लूँगा।'

'अच्छा चलो दूसरी दूकान में चलें।'

सलीम का मुँह उतर गया। वह रूआँसा सा होकर बोला,—'मुझे ले दीजिये न, मैं किसी को नहीं दिखाऊँगा।' स्वदेश उसकी बात अनसुनी सी कर के दुकान के बाहर आया तो उसने देखा सलीम की आँखों में आँसू थे। अब स्वदेश से न रहा गया और उसने दुकान से बाँसुरी वाले कृष्ण की मूर्ति खरीद ही तो दी। सलीम ने तुरन्त उसे अपनी छोटी सी शेरवानी की जेब में छिपा लिया। स्वदेश बन्धु को बम्बई घूमने का चस्का जोरों से लगा था फलतः उसने दोपहर का खाना रशीदा के घर न खाकर होटल में खाया और सलीम को भी खिलाया।

शाम को वे दोनों जब घूम कर लौटे तो ५ बजे थे। सलीम जब अन्दर गया तो देखा—रशीदा-आपा चटाई पर बैठी आँखों को बन्द किये नमाज पढ़ रही हैं। सलीम को कुछ चुलबुलाहट हुई और उसने अपनी जेब से मूर्ति निकाल कर रशीदा के ठीक सामने रख दी। वह बगल के कमरे से छिपकर देखना चाहता था कि क्या होता है। रशीदा ने अपने माथे को जब जमीन से लगाया तो सलीम को पंडितायिन का ध्यान आया। इसी समय उस कमरे में कहीं से हुसेन भाई का आगमन हुआ और मूर्ति के आगे रशीदा का सर झुका देखकर वे आग-बबूला हो गये। बोले, हाजी के घर में बुत की पूजा ?' दोजख मिलेगा बेगम तुम्हें। रशीदा की आँख खुल गई। उसका ध्यान

भग हो गया। उसने अपने सामने सचमुच एक मूर्ति देखी। वह काँप उठी। बोली,—'खुदा की कसम मै नहीं जानती यह कहाँ से आई।'

'हूँ तो यह हिन्दुओं का सतयुग आ गया है कि भगवान अपने आप प्रगट हो रहे हैं। हुसेन भाई ने क्रोध करते हुये मूर्ति अपने हाथों में उठाकर उसे पटक दिया। भाग्यवश मूर्ति खण्डित नहीं हुई और इसी क्षण सलीम ने दौड़ कर उठा लिया उसे। रशीदा और हुसेन भाई विस्मय से उसकी ओर देखने लगे। सलीम बोला,—'यह मेरे भगवान हैं। इस खिलौने को मैं लाया हूँ। दुल्हा भाई आपने इसे क्यों पटका?'—हुसेन भाई ने कहा,—'अच्छा यह बात है! हजरत स्वदेश का यह भी पेशा है। मुसलमानों के घर में घुस कर मूर्ति पूजा सिखाना, यानी सभी को काफिर बनाना।'

'यह आप क्या कह रहे हैं।' रशीदा बीच में ही बोली,—'काफिर! स्वदेश बन्धु को काफिर! नहीं वह एक नेक इन्सान है। सच्चा इन्सान, जो धर्म या मजहब के कच्चे धागे में बँधने वाला नहीं। मैं जानती हूँ वह क्या हस्ती है। यह मूर्ति सलीम ने जिद कर के खरीदी होगी। मैं जानती हूँ सलीम की आदत। अव्वल दर्जे का पाजी है यह। मेरी आँख बन्द देखी और शैतानी के जोश में मूर्ति को समाने रख दिया।'

'हाँ हो सकता है कि तुम ठीक कहती हो।' हुसेन भाई ने कहा, 'लेकिन मैं इसको बरदाश्त नहीं कर सकता। सलीम को स्वदेश के साथ इलाहाबाद जाने दो, मैं तुम्हें अब ऐसे शख्स के साथ नहीं भेज सकता।'

रशीदा जोश में बहुत कुछ बोल चुकी थी। कल तक शर्म से उसके मुँह से आवाज भी न निकल पाती थी किन्तु आज वह अपनी सफाई देने के लिये बहुत बोल बैठी थी। उससे अब कुछ न बोला गया। वह मौन हो गई।

× × ×

स्वदेश सलीम को लेकर इलाहाबाद लौट आया। मौलाना मन्सूर आलम ने जब बेटी को न देखा तो एक प्रश्न भरी दृष्टि स्वदेश पर डाली। स्वदेश ने थोड़े से शब्दों में कह दिया—रशीदा को हुसेन भाई स्वयं लेकर आयेंगे। मन्सूर साहब को कुछ सान्त्वना मिली। और सलीम से पूछा,—'बेटा क्या लाये हो बम्बई से?' वह बोला,—'आसुमल का कराची हलवा।' उसने हलवे का पैकट डोलची से निकाल कर देते हुये कहा,—'लखनऊ के कमीनों की टोकरी लाया हूँ।' 'क्या मतलब?' मन्सूर साहब ने पूछा और सलीम ने डोलची से एक छोटी-सी पिटारी निकालते हुये कहा,—'दुल्हा भाई ने खिलौने की यह टोकरी दी है।' सलीम ने टोकरी खोलकर एक दो खिलौने बाहर रखते हुये कहा,—'यह है कुंजड़ा, तरकारी वाला और यह है भिश्ती।' अब टोकरी के अन्य खिलौने निकालता हुआ वह बोला,—'यह मेहतर, यह है मोची, यह है कहार और यह है नाई।' मन्सूर साहब ने खिलौने देख कर कहा,—'वाह कमाल के खिलौने हैं, ऐसा मालूम होता है कि ये सब बोलने ही वाले हैं।'—इसी समय स्वदेश जो अभी भी वहीं बैठा था बोला,—'यह क्या बोलेंगे बिचारे हमारे और

आपके यहाँ असली काम करने वाले जब नहीं बोल पाते। क्या कहूँ, जनता के इन सेवकों को कहा जाता है 'कमीन'। यह वे सेवक हैं जो सिर्फ काम ही करना जानते हैं, नाम करना नहीं जानते। मन्सूर साहब बोले,—'कहते तो ठीक ही हो स्वदेश! और हाँ सलीम! और कुछ लाये हो तो वह भी दिखाओ। सलीम ने कहा,—'एक चीज और लाया हूँ।' 'वह क्या,'—मन्सूर साहब ने उत्सुकता से पूछा और सलीम ने शेरवानी की जेब से कृष्ण की मूर्ति निकाल कर कहा, 'यह बाँसुरीवाला।' मन्सूर सलीम का मुँह देखते ही रह गये। सलीम ने पूछा,—'क्या यह अच्छा नहीं लगा आपको ?' मन्सूर साहब ने स्वदेश का मुँह देखते हुए कहा,—'अच्छा है, पर तू लाया कहाँ से। किसने तुझे यह बुत पकड़ा दिया।' सलीम ने कहा,—'स्वदेश भाई ने। उस दिन जब पंडिताइन जी ने मुझे मारा था तो मैं इसी बाँसुरी वाले को देखने गया था।' मन्सूर साहब बोले,—'ठीक है लेकिन यह तो बुत है। हम लोगों के यहाँ नहीं रक्खा जाता।' सलीम ने पूछा, क्यों ?' मन्सूर जी ने बात टालते हुये कहा हर बात के पीछे क्यों मत पूछा कर। यह मूर्ति तू स्वदेश को लौटा दे। सलीम ने सोचा सचमुच यह कोई बडी गड़बड़ वस्तु है। तभी तो इसके पीछे आपा ने डाँट खाई और मुझ पर भी दूल्हा भाई बिगड़े थे। उसने सहमे हुये भाव से मूर्ति को स्वदेश के सामने करते हुए कहा,—'लीजिये अब्बा जान का हुक्म है।' स्वदेश ने चुपचाप मूर्ति को अपने हाथों में ले लिया और उसी क्षण उठ कर वहाँ से अपने घर चला आया। सलीम मन ही मन सोचता रहा—कितना अच्छा खिलौना था वह बाँसुरी वाला। रात को सलीम अपनी अम्मीजान के बगल में पड़ा सो रहा था। अचानक वह चौंक उठा। उसकी अम्मीजान ने उसके सिर पर हाथ रखा तो देखा उसको जोरों से बुखार चढ़ा था। बिजली जलाकर घडी देखी तो रात के डेढ़ बजे थे। बेगम ने इतनी रात को मन्सूर साहब को जगाना बेकार समझा। आधे घंटे के अन्दर ही बुखार और तेज हो गया। वे लेटे-ही लेटे बहुत कुछ उल्टा सीधा सोचने लगीं और ऐसी ही दशा में उनको झपकी लग गई।—उन्होंने एक स्वप्न देखा—सलीम का जनाजा जा रहा है और उसके कफन के ऊपर वही मूर्ति बैठी बाँसुरी बजा रही है। बेगम सोते में ही चीख उठीं। उनकी आँख खुल गई। उन्होंने तुरन्त मन्सूर साहब को जगाया और अपना स्वप्न उन्हें सुनाते हुये कहा,—'मेरे ख्याल से उस मूर्ति को लौटाना अच्छा नहीं हुआ। पता नहीं सलीम को कैसा सदमा पहुँचा कि उसके इस वक्त काफी तेज बुखार है और फिर आपने देखा होगा स्वदेश ने कितना बुरा माना। उसकी दी हुई चीज उसे लौटा दी गई। मूर्ति लौटाने के बाद एक मिनट भी वह यहाँ नहीं रुका,—'ठीक है उसे बुरा जरूर लगा है, लेकिन सोचो तो सही, एक मुसलमान होकर अपने घर में बुत कैसे रखूँ ?'

स्वदेश ने हमारे साथ बहुत एहसान किये है। उसे नाराज करना अच्छा नही, फिर देवी-देवता किसी के भी कम हस्ती वाले नही होते मेरे ख्याल से स्वदेश के कृष्ण मुझसे नाराज हो गये हैं मुझे उन्हें खुश रखना ही चाहिये या खुदा मेरा सलीम

अगर सुबह तक अच्छा हो गया तो मैं वादा करती हूँ कि कृष्ण की मूर्ति की स्थापना करा दूँगी।'

'लेकिन बेगम! हम लोगों के घर में बुत? यह कैसी मानता मान बैठीं!'

'कोई बात नहीं। बेटे से अजीज क्या चीज हो सकती है। यह जरूरी नहीं कि मूर्ति की स्थापना घर में ही की जाये वह तो घर के बाहर भी हो सकती है। बनवा देना एक छोटा सा मंदिर।'

'मंदिर मैं बनवाऊँ! यह मुझे क्या समझा रही हो?'

'क्यों, कोई बड़ी बात है क्या। नवाबी के वक्त में हर शहर में जो मस्जिदें बनी, उनमें मालूम है कितना रुपिया हिन्दुओं ने चन्दा में दिया था?'

'दिया होगा।'

'तो फिर तुम्हारे पैसे से अगर एक मंदिर बन जायगा तो क्या इस्लाम मिट जायगा?'

'नहीं, कभी नहीं। इस्लाम कभी नहीं मिट सकता। मैं मंदिर जरूर बनवाऊँगा। स्वदेश की दी हुई चीज की इज्जत करूँगा। उसने हमें अपनाया है, हम उसे दूर नहीं कर सकते। खुदा सलीम को सेहत बख्शे।' मन्सूर ने आवेश में इन शब्दों को जोर से कहा और किसी प्रकार से रात काटी। प्रातः होते ही संयोग से सलीम का बुखार उतर चुका था। उसे पूरा आराम था।

× × ×

कुछ दिन बाद लोगों ने देखा कि बंगले के बाग में एक सुन्दर सा मंदिर बना है और उसमें श्री कृष्ण की संगमरमर की एक मूर्ति बाँसुरी बजाती हुई खड़ी है। मंदिर के फाटक पर एक पत्थर लगा है। लिखा है 'मन्सूर का मंदिर।'

आज भी जब कोई इस नामकरण से चौंक कर मंदिर का इतिहास पूछता है तो लोग कहते है—

पं० चन्द्रभाल बाजपेयी ने बीस साल की ऐडवोकेटी के बाद एक सुन्दर सा बंगला बनवाया। बंगले का एक भाग किराये पर उठाने के विचार से उन्होंने उस भाग को जरा अच्छे ढंग से................ □

प्रतिमान, प्यार का

अविनाश की पड़ोसिन रेखा पाल एक बंगालिन लड़की थी। बालों का शृंगार नित्य ही उसका बदलता था और उसके छरहरे बदन से लिपटा हुआ उसका गौर वर्ण उसकी आयु के साथ-साथ अरुणिम होता जा रहा था।

अविनाश उसे जब भी देखता, हठात् उसे देखता ही रह जाता। स्कूल जाते समय अथवा वहाँ से लौटते हुए उसकी दृष्टि रेखा की खिड़की पर अवश्य जाती थी। रेखा से यह बात छिपी न रह पायी। रेखा भी स्कूल जाती थी, किन्तु उसका स्कूल जाने का समय अविनाश के स्कूल जाने के समय के उपरान्त और लौटने का, अविनाश के लौटने के पूर्व होता था। कभी ऐसा भी हो जाता था कि दोनों आमने-सामने हो जाते थे। अविनाश कुछ बोलता नहीं था, किन्तु दृष्टि भर कर उसे देखता जरूर था।

अविनाश बहुत ही साधारण घर का लड़का था, शरीर से दुबला-पतला किन्तु बुद्धि का तेज। गर्मियों के दिनों में जब परीक्षाफल घोषित होते तो वह प्रायः प्रथम अथवा द्वितीय स्थान अपनी कक्षा में पाता था। रेखा पढ़ने में तेज नहीं थी किन्तु इसमें उसकी दृष्टि बहुत तेज थी कि उसके ऊपर किसकी-किसकी आँखें उठती हैं।

दिन बीतते गए और अविनाश ने जहाँ एक ओर रेखा को बार-बार देखने का बहाना ढूंढ़ा वहीं उसे किसी न किसी प्रकार से रिझाने का बहाना भी ढूंढ़ता रहा।

एक दिन जब वह कालेज से लौटा तो दो-तीन गुलाब के फूल अपने हाथ में लेता आया। मोहल्ले में आकर उसने लोगों की आँखें बचा कर उन फूलों को रेखा की खिड़की पर जल्दी से रख दिया और अपना बस्ता उठा कर आगे बढ़ आया। वह पाँच-छः पग ही आगे बढ़ पाया था कि उसने देखा कि वे गुलाब के फूल गली में फेंक दिये गए हैं और खिड़की फट्ट से बंद हो गयी है।

अविनाश को बहुत बुरा लगा। वह सोचने लगा कि क्या वह इतना बुरा है कि रेखा उससे इतनी नफरत करे! किस बात की कमी है उसमें! आखिर रेखा चाहती क्या है! पिछले दो साल से वह मुझे देख रही है, क्या मैं कोई गुण्डा या बदमाश हूँ! इसने हाईस्कूल मात्र तृतीय श्रेणी में पास किया है किन्तु मैंने हाईस्कूल और इण्टर दोनों ही प्रथम श्रेणी में पास किया है। बड़ी घमण्डी है, मैं भी अब उसे आँख उठा कर नहीं देखूँगा

उस दिन से अविनाश रेखा से खिचा-खिचा-सा रहने लगा। इस वर्ष अविनाश को बी० ए० फाइनल की परीक्षा देनी थी। उसने तन-मन से अपनी पढ़ाई शुरू की। रेखा यदि अब सामने भी पड़ जाती तो वह कतरा कर निकल जाता था। ऐसी उपेक्षा रेखा को कुछ खटकने लगी। वह चाहती थी कि वह भले ही किसी को चाहे या न चाहे किन्तु उसकी उपेक्षा कोई न करे।

बी० ए० फाइनल का परीक्षाफल घोषित हुआ और अविनाश प्रथम श्रेणी से पास हुआ। यह समाचार रेखा ने भी सुना और उस दिन वह जानबूझ कर बड़ी देर तक खिड़की के सामने आती जाती रही। अविनाश मोहल्ले के लोगों की बधाइयाँ बटोर रहा था। अविनाश रेखा की खिड़की के सामने जब आया तो रेखा ने भरपूर दृष्टि उस पर डाली। अविनाश सिहर उठा, किन्तु कुछ बोला नहीं। वह चुपचाप आगे बढ़ गया। कुछ देर बाद जब वह लौटा तो रेखा फिर वहीं खड़ी मिली। अविनाश की दृष्टि अनायास उधर उठी, और रेखा मात्र एक टक उसे देखती रही। अविनाश थोड़ा सा मुस्कराया और आगे बढ़ गया।

दूसरे दिन अविनाश रेखा की खिड़की के पास से गुजरा तो रेखा वहाँ नहीं थी, किन्तु जब वह फिर उधर से ही लौटा तो रेखा वहाँ खड़ी थी। उसने अविनाश को देखते ही कागज का एक गोल पोंगा उसकी ओर फेंका। अविनाश ने उसे खोला तो उसमें एक चित्र बना हुआ था। चित्र में एक नदी थी और नदी के किनारे कमल की नाल से बालू पर लिखा था—अनेक बधाइयाँ। अविनाश ने एक बार फिर रेखा को देखा और उस चित्र पर उसने अपनी उँगलियाँ इस प्रकार रखीं जैसे वह उस चित्र को फाड़ डालेगा। रेखा ने तुरन्त हाथ हिलाकर ऐसा करने को मना किया। अविनाश ने तुरन्त उसकी ओर बढ़कर पूछा—तुमने मेरे फूल क्यों फेंक दिये थे। रेखा चुप खड़ी रही। केवल उसने अपने होंठों को काटा और धीरे से खिड़की भेड़ दी।

अविनाश ने घर आकर उस चित्र को अपनी फाइलों के अन्दर रख लिया। गर्मी की छुट्टियाँ अभी बीती भी नहीं थीं कि एक दिन अचानक उसने सुना रेखा का परिवार लखनऊ चला गया। उसके पिता का स्थानान्तरण हो गया था।

× × ×

—आपका नाम क्या है ?

—अविनाश चन्द्र।

—और यह बच्ची ?

—यह मेरी अपनी ही है।

—लेकिन इस बाढ़ के इलाके में इसे लेकर आने की, मेरा मतलब है डिब्रूगढ़ की क्या दशा है वह तो अखबारों में आपने पढ़ा होगा।

—उसी को पढ़कर तो यहाँ वालिंटियर बनकर आया हूँ। इसकी माँ नहीं है, इसलिये साथ लाना पड़ गया आप चिन्ता न करें बहुत है।

—समझदार ! यह चार-पाँच साल की लड़की कितनी समझदार होगी ? खैर क्या नाम है इसका ?

—चन्दा ।

—वाह, नाम तो बहुत अच्छा है । आइये अन्दर आइये ।

और अविनाश सेठ महेश्वरी दास के धर्मशाले में प्रवेश कर गया ।

—आपने दूसरी शादी नहीं की ?

—सोचा तो कई बार, किन्तु कुछ अधिक दूर तक सोचने से इच्छा दब गई ।

—ठीक ही सोचा आपने । आप चन्दा को यहीं धर्मशाले में छोड़ दीजियेगा । यहाँ और भी बच्चे हैं । आपको रिलीफ कैम्प में जाना होगा ।

और अविनाश रिलीफ-कैम्प में पहुँच गया । सैकड़ों व्यक्ति इधर-उधर तम्बुओं मे पड़े थे । किसी का सर फट गया था, किसी का हाथ टूटा था । बाढ़ से गिरते हुए मकानों से खोद-खोद कर निकाले हुए लोग और उफनती हुई ब्रह्मपुत्रा की धार से खींचे हुए शव, भयंकर दृश्य उपस्थित कर रहे थे ।

अविनाश ने डाक्टर की सहायता करते हुए एक चिल्लाते हुए जवान के सर पर जब पट्टी बँधवाई तो डाक्टर ने धीरे से कहा—इसका बयान नोट कर लीजिये ।'

—आपका नाम ?

—कालीशंकर मिश्रा ।

—कहाँ रहते हैं ?

इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिला । कालीशंकर बेहोश हो गया था । उसके मुख पर पानी के छींटे दिए गए । वह फिर होश में आया और आँखें खोलते ही उसने इधर-उधर देखकर पूछा—अरुण कहाँ है ?

—कौन अरुण ?

—मेरा लड़का ।

—अभी बुलाकर लाता हूँ ।

—रेखा को भी....।

—रेखा क्या आपकी पत्नी हैं ?

—हाँ, हाँ, जल्दी बुलाइये । अब मैं जीवित नहीं रहूँगा ।

—क्या कह रहे हैं ! आप, बिल्कुल अच्छे हो जायेंगे ।

—नहीं मैं मरने के पहले अरुण और रेखा को देखना चाहता हूँ । लेकिन हाँ रेखा तो हमारे साथ यहाँ नहीं आई वह तो बह गई थी । क्या उसे पकड़ा जा सका ?

—मैं अभी ढूँढ़ कर अरुण को लाता हूँ ।

—आप उसे कैसे पहचानेंगे । चलिये मैं भी चलता हूँ ।

—नहीं, नहीं । आप मत उठिये । आपको उठना मना है ।

किन्तु होश में आकर उठ खड़ा हुआ वह दो-तीन कदम ही चला

था कि धड़ाम से गिर गया। अविनाश ने उसे उठा कर पलंग पर लिटाया, किन्तु इतनी ही देर में उसकी हृदयगति रुक गयी।

अविनाश वहाँ से भाग कर महिलाओं के कैम्प में गया। वहाँ वह पीड़तों की सूची में रेखा का नाम ढूंढ़ने लगा। सूची में तीन-चार रेखा थीं किन्तु कालीशंकर की पत्नी न थी। अब वह अनाथ बच्चों के कैम्प में गया। वहाँ उसे अरुण नाम का एक लडका मिला। पिता का नाम पूछने पर उसने कालीशंकर बताया और माँ का नाम पूछने पर वह कुछ सोचने लगा।

—तुम्हारे नाना कहाँ रहते हैं ?

—लखनऊ में।

लखनऊ का नाम सुनते ही अविनाश की जिज्ञासा बढ़ गयी।

—अपने नाना जी का नाम जानते हो ?

—हाँ, विमलचन्द्र पाल।

विमलचन्द्र पाल का नाम सुनते ही अविनाश अतीत की गहराइयों में डूब गया। विमल बाबू ही तो रेखा के पिता थे। यह तो उस रेखा का ही बेटा है। मुझे रेखा को खोजना चाहिये।

उसने पूरा कैम्प छान मारा किन्तु उसकी वह रेखा कहीं नहीं मिली। अविनाश ने अब पुनः अरुण को अपनी बाहों में भर कर प्यार किया और उससे कहा कि वह उसको उसकी माँ से मिला देगा, लेकिन उसे उसके साथ बनारस चलना होगा। अरुण उसकी चन्दा से बड़ा था। उसने अपने पिता को पूछा तो अविनाश ने साफ साफ उसे बता दिया कि वे अब नहीं रहे।

अविनाश सात दिन तक बाढ़ पीड़ितों के बीच काम करता रहा। आठवें दिन रिलीफ सोसायटी की अनुमति से वह अरुण को अपनी चन्दा के साथ लेकर बनारस के लिये चल पड़ा। रिलीफ कैम्प में उसका नाम और पता नोट कर लिया गया।

चन्दा और अरुण अब साथ-साथ रहने लगे। अविनाश ने अरुण के स्वास्थ्य के लिये अपनी डेरी से दूध बँधवा दिया। दो तीन महीने में वह दुबला पतला बालक खिल उठा। अविनाश ने जिस लड़की को अपने तरुण जीवन में कभी प्यार की दृष्टि से देखा था अब वह उसके लड़के को अपना संरक्षण देकर एक दूसरे ही प्रकार का आत्मिक सन्तोष और सुख पा रहा था।

कुछ दिनों बाद एक दिन शाम को जब अरुण और चन्दा अपने अपने कटोरो मे दूध पी रहे थे तो अचानक बाहर का द्वार किसी ने खटखटाया। अविनाश ने किवाड़ खोलकर देखा तो एक दुबली पतली बंगालिन सामने खड़ी थी। उसकी आँखें कमजोरी से डगडग हो रही थी। उसके हाथ में एक छोटी-सी पोटली थी। उसने सहमी हुई दृष्टि से देखा और पूछा—क्या अविनाश बाबू इसी घर में रहते हैं।

—हाँ कहिये, मैं ही अविनाश हूँ।

—आप डिबरूगढ़ से अपने साथ कोई लड़का लाए हैं।

—हाँ, हाँ, अरुण।

—अरुण मेरा ही बेटा है। मैं उसको लेने आई हूँ।

और पूर्व इसके कि अविनाश उससे कुछ कहे वह अन्दर चली आई। सामने ही अरुण बैठा था। उसने प्यार से उसे एक आवाज दी और अरुण दूध का कटोरा छोड़ कर अपनी माँ से लिपट गया। माँ की आँखों से आँसू गिरने लगे और चन्दा विस्मय से उसका मुख ताकने लगी।

—तुम्हारी माँ कहाँ है, बेटी ?

—मेरी माँ मर गयी।

—तो, तो........।

हाँ इसकी माँ मर गयी।

—तो आप अकेले ही दोनों बच्चों को पाल रहे हैं।

—हाँ, दोनों को सुबह स्कूल पहुँचा देता हूँ और शाम को अपने साथ ले आता हूँ।

अविनाश इस औरत को देखते ही पहचान गया था किन्तु वह उसे नहीं पहचान सकी थी।

—आपने मेरे अरुण को इतने थोड़े समय में ही नया जीवन दे दिया है, किन्तु मैं इसे अब ले जाना चाहती हूँ।

—कहाँ ले जाओगी, तुम्हारा घर कहाँ है ?

—मेरा घर तो अब कहीं नहीं है !

—और अब तक थी कहाँ ?

—मैं तो नदी में बह गयी थी। आठ-दस किलोमीटर दूर मुझे कुछ मल्लाहों ने पकड़ कर मेरी जान बचा ली। मैं बहुत दिनों से अपने अरुण को खोज रही थी। इसके पिता के निधन से मैं जल्द ही अवगत हो गयी थी किन्तु अरुण का पता तो बहुत मुश्किल से लगा। मुझे मेरा बेटा दे दीजिये।

—तुम इसे लेकर जाओगी कहाँ ?

—मैं कलकत्ता जाऊँगी। सरकारी अस्पताल में मिड वाईफ का काम सिखाया जा रहा है। अब मैं वही सीखूँगी।

—मिड वाइफ ! यानी दायी का काम। कितने रुपये मिलेंगे वहाँ ?

—सीखने के समय तक सौ रुपये और काम सीखने के बाद २६०) रु० मिलेंगे। साल में दो बार कपड़े और रहने का मुफ्त एक कमरा।

—यह तो बहुत कम है।

—नहीं, यह मेरे लिए बहुत है, जब मेरा रखवाला ही नहीं रहा तो मुझे अब मात्र अरुण के लिए जीना है

—लेकिन तुम यदि अरुण को यहीं रखो तो शायद उसे और अच्छी तरह पाल सकती हो।

—वह कैसे हो सकता है ? मैं यहाँ कैसे रह सकती हूँ ? लोग क्या कहेंगे !

—कौन लोग ? क्या कहेंगे ? ये कहने वाले लोग क्या किसी का हाथ बटाने भी आते हैं ! मैं तुम्हारा प्रबन्ध कर दूँगा।

—कहाँ ?

—इसी घर मे। मैंने तो तुम्हारे बेटे को पालने में अपना प्यार अर्पित किया, क्या तुम हमारी बेटी को अपनी उपस्थिति का भी संरक्षण नहीं दे सकतीं ?

रेखा इस प्रश्न पर एकदम चुप रह गयी। अविनाश ने उसकी पोटली उठाकर अन्दर के कमरे में रखी।

अब रेखा के आँचल के तले वे दोनों बच्चे पलने लगे।

अविनाश अन्दर ही अन्दर बहुत प्रसन्न रहने लगा। कुछ दिन बीते, अविनाश ने रेखा के लिए भी अपनी डेरी से दूध बँधवा दिया। धीरे-धीरे रेखा का बदन भी चिकना होने लगा।

एक दिन दर्पण में अपने शरीर को देखकर सोचने लगी—ये आदमी कितना भला है। मानवता और सज्जनता कूट-कूट कर भरी है। महीनों बीत गए किन्तु एक बार भी इसकी मनःस्थिति न डोली। हाँ कभी-कभी जब वह उसे गरम-गरम रोटियाँ सेंक कर देती है तो वह कई बार उसे दृष्टि भर कर देखता है, कुछ-कुछ मुसकराता है, किन्तु अधिक कुछ बोलता नहीं।

लगभग चार महीने बाद रेखा ने एक दिन यह अनुभव किया जैसे उसका यौवन पुनः लौट रहा है। वह सोचने लगी, क्या इस सौन्दर्य का कोई मूल्य है ! उसे अचानक अपनी किशोरावस्था के दिन याद आए। उसे उस अविनाश की याद आई—एक वह अविनाश था जो मेरी खिड़की पर भ्रमर की तरह मंडराया करता था और एक ये है, जो मुझसे बात भी कठिनाई से करता है, वह अविनाश दुबला-पतला और चंचल, कितनी आकर्षक थी मैं उसके लिए ! उस अविनाश और इस अविनाश में कितना अन्तर है। वह चंचल, तो ये गम्भीर। वह दुबला-पतला तो यह आधे पहलवान। उसके चेहरे पर मात्र मूँछों की एक रेख किन्तु इनकी घनी दाढ़ी और मूँछ। इस दाढ़ी और मूँछ मे कहीं वही अविनाश तो नहीं छुपा। कभी-कभी बहुत कुछ वैसा ही मालूम होता है किन्तु वह अविनाश मुझे इतना निकट पाकर भी इतना तटस्थ कैसे रह सकता है ! शायद मैं उसकी दृष्टि में अब वह नहीं हूँ। ठीक भी है, मैं अब वह कहाँ हूँ ! मैं तो अब अरुण की माँ बन चुकी हूँ, एक विधवा माँ।

रेखा यह सब सोच ही रही थी कि अचानक अविनाश ने घर में प्रवेश किया।

—आज आप दोपहर में ही कैसे चले आए ? कोई खास काम ?

कोई नहीं, बस न जाने क्यों आज मन दफ्तर में नहीं लगा। इधर चार-पाँच

दिन से मिलिट्री में माल सप्लाई करने के कारण बहुत काम था। आज कुछ हल्का हुआ, तो मैंने सोचा चलूँ घर पर ही आराम करूँ। अरुण और चन्दा कहाँ हैं ?

—वे लोग अभी स्कूल से नहीं लौटे।

—अरे हाँ, तुम तो अकेली ही घर पर रह जाती हो।

रेखा चुप रही, किन्तु बड़े ध्यान से अविनाश को देखने लगी। अविनाश ने भी उसको ऊपर से नीचे तक देखा और बोला—अब तो तुम काफी स्वस्थ्य हो गयी हो।

—आपकी कृपा है। रेखा ने अपनी मुस्कान रोकी।

—कृपा की क्या बात है रेखा, सब भगवान की लीला है।

—भगवान की लीला है, ! इसमें भगवान की लीला की क्या बात है ?

—लीला ही है, किन्तु तुम नहीं समझतीं।

अविनाश इतना कह कर बाहर जाता हुआ बोला—मैं अभी एक घण्टे मे आऊँगा। मुझे एक विशेष काम ध्यान में आ गया है।

अविनाश बाहर चला गया। रेखा घर में फिर अकेली रह गयी। उसे भगवान की लीला का रहस्य जानने की चिन्ता हो गयी। शायद यह वही अविनाश है। वह अविनाश के कमरे की कुछ सफाई करने लगी। उसने अल्मारी पर रखा हुआ एक अल्बम देखा। उसने कुतूहल से उठाया, क्योंकि इसके पहले वह उसके देखने में नही आया था। इस अल्बम में अविनाश के बचपने से लेकर जवानी तक के कई फोटो लगे थे। वाह यह तो वही अविनाश है। उसने उस अल्बम में एक वह चित्र भी देखा जो अविनाश ने बी० ए० पास होने पर गाउन के साथ खिचवाया था और उसी चित्र के सामने वाले पृष्ठ पर उसने वह कागज का टुकड़ा भी चिपका हुआ पाया जिस पर उसने एक चित्र में 'अनेक बधाइयाँ' उसे दी थीं। वह उस चित्र को इतना सुरक्षित रखा देख कर हतप्रभ हो गयी और अन्दर ही अन्दर बोली—सचमुच यह भगवान की लीला है। मैं कितनी मूर्ख हूँ, मुझे तो पहले दिन ही पहचान लेना चाहिये था, किन्तु मैं ऐसी मुलाकात की कल्पना भी नहीं कर सकती थी। उसने मुझे अवश्य पहले से पहचान लिया है। उसने मेरे इस चित्र को कितना सँभाल कर रखा ! आज दस वर्षो बाद भी यह सुरक्षित है और मैं इनके उन गुलाब के फूलों को दस मास, दस दिन, दस घण्टे क्या दस मिनट भी नहीं रख सकी थी। कितना अहंकार था मुझमें ! मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था।

रेखा का हृदय भर आया। आँखें छलछला उठीं। वह अविनाश के घर लौटने की कठिन प्रतीक्षा करने लगी। थोड़ी ही देर बाद उसने देखा अविनाश फिर आ गया है। उसने दौड़कर उसके चरण पकड़ लिये। अविनाश समझ गया कि रहस्य अब खुला है, किन्तु उसने पूछा—यह क्या बात है ? रेखा कुछ नहीं बोली, केवल सिसकती रही। अविनाश ने अपने दोनों हाथों से पकड कर उसे खडा किया।

—तुम्हें क्या हो गया ?

—क्षमा, मैं क्षमा चाहती हूँ, मैंने पहचाना नहीं था। मैं कितनी मूर्ख हूँ।

अविनाश चुप होकर, मात्र उसे देखता रहा और रेखा आगे बोली—अविनाश ! आज मैं वह पवित्र रेखा नहीं हूँ जो आपके इस अमर प्रेम के तराजू पर तौली जा सकूँ।

—रेखा ! तुम तो आज भी उतनी ही पवित्र हो जितनी तब थीं। जो अपने पति के प्रति समर्पित रहा हो उसे दूषित कैसे कहा जा सकता है ! तुम यदि एक संतान की माँ बन चुकी हो तो मैं भी तो अब एक संतान का पिता हूँ।

—क्या कह रहे हैं आप ! मैं तो आपकी मानवीयता की ऊँचाई, नाप नहीं पा रही हूँ। आपका वह प्यार इतना ऊँचा था !

—मेरा वह प्यार जो गुलाब के फूलों से प्रकट हुआ था वह प्रेम नहीं था, बचपना था....आवेश था, स्वार्थ था शायद उसमें एक किशोर की वासना भी थी। प्रेम तो शायद यह है—पूर्व परिचय का प्रेम, मानवता का प्रेम, किसी की सेवा से प्रेम। आज मेरा हृदय अन्दर से कितना गद्गद् है ! मैंने तुम्हारी परिस्थिति पर नहीं, तुम्हारे शरीर पर नहीं, तुम्हारे हृदय पर विजय पाई है।

रेखा किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी उसे देखती रही और वह आगे बोला—रेखा ! हमारे तुम्हारे सामने बहुत बड़ा भविष्य पड़ा है, अपनी आत्मा के टुकड़े चन्दा और अरुण का भविष्य ! हम तुम यदि इन लोगों को नया जीवन देने के लिये मिल सके हैं तो....।

—आप तो देवता हो गए हैं। सामान्य से परे। किन्तु अब मेरा हृदय डाँवा-डोल हो रहा है। मुझे नहीं पता मैं इतना ऊपर उठकर आपके साथ चल सकूँगी अथवा नहीं।

उस क्षण अविनाश कुछ नहीं बोला। लेकिन दो-चार दिन बाद ही एक दिन अविनाश किसी विशेष मनः स्थिति में रेखा को कुछ ऐसी दृष्टि से ताकने लगा कि रेखा की मस्तिष्क की शिराएँ झंकृत हो उठीं। छुट्टी का दिन था, अविनाश दिन भर घर मे रहा और दिन में कई बार रेखा ने यह अनुभव किया जैसे अविनाश की दृष्टि उसे गुद-गुदाना चाहती है। शायद यह अविनाश का अन्तरद्वन्द्व था कि वह रेखा की ओर बढना चाह कर भी बढ़ नहीं पा रहा था।

रेखा की तीव्र संवेदनशीलता ने सब कुछ समझ लिया, किन्तु वह भी कुछ बोली नहीं। रात को खाना खाने के बाद अविनाश अपने कमरे में चला गया और रेखा अपने कमरे में आकर लेट गयी। थोड़ी देर लेटने के बाद जब अरुण और चन्दा सो गए तो वह उठकर अविनाश के कमरे में पहुँची। अविनाश सोया नहीं था। उसकी आँखें खुली हुई थीं। रेखा को कमरे में आया देख कर पूछा—क्या बात है ?

रेखा उसकी चारपायी की पट्टी पर बैठकर बोली—मैं कल आपके घर से चली जाना चाहती हूँ

—क्योंकि आप जीवन की जिस ऊँचाई पर रह कर जीना चाहते हैं मैं उसमें बाधक नहीं बनना चाहती !

—क्या मतलब है इस बात का ?

—मेरी भावनाएँ यदा-कदा बहुत दूषित हो जाती हैं। आप तो देवता हैं, किन्तु मैं, मैं तो अपनी मानवीय काया से प्रताड़ित होती रहती हूँ।

अविनाश के मन का चोर झकझोर उठा। वह समझ गया कि रेखा उसके पास स्वयं से इसलिए चली आई है कि उसकी मर्यादा की रक्षा हो सके। उसने धीरे से रेखा का हाथ पकड़ा और कहा—तुमको कहीं जाने की जरूरत नहीं है। मैं अब तक आदर्श पालने के चक्कर में यथार्थ से लड़ रहा था, तुमने मुझे परोक्ष में मेरे यथार्थ का बोध करा दिया है। मैं अब तुम्हारे बिना नहीं रह सकता।

रेखा ने मौन होकर उन सभी प्रश्नों के उत्तर दे दिये जो अविनाश और उसके बीच रूप बदल-बदल कर प्रायः खड़े हो जाते थे। □

सिपाही, भारत का

दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद यह पहली शरद ऋतु आई थी। ब्रह्म देश के निवासी नई ऋतु के स्वागतार्थ अपने-अपने घरों की सफाई कर चुके थे। उजड़े हुए गाँवों में वहाँ के मूल निवासी लौट रहे थे। भयंकर ताण्डव नृत्य के बाद सम्पूर्ण देश मे आंतरिक अशांति होते हुए भी एक नई और सूनी शांति चारों ओर दृष्टिगत थी। नगरों की बात कुछ दूसरी थी। वहाँ, जहाँ-तहाँ विजय-नृत्य और ध्वजारोहण के कार्य-क्रम विशेष उल्लास से सम्पन्न किये जा रहे थे। सेना अधिकारियों के घरानों की कोठियाँ बिजली की सुनहरी किरणों से आलोकित होकर रंगून की चौड़ी-चौड़ी सड़कों पर एक असाधारण छटा बिखेर रही थीं।

आधी रात बीती। सड़क पर सन्नाटा छाया। एक कोठी की रंगीन काँच की खिड़कियाँ बन्द हुईं। बलवन्त सिंह अपनी फौजी वर्दी पहने रंगून से मांडले जाने वाली सडक पर आगे बढ़ रहा था। उसका पहरा उस दिन रंगून शहर से ५ मील उत्तर पर लगा था। कमाण्डेण्ट की विशेष अनुमति पाकर उसने उस रात सेकेण्ड शो सिनेमा देखा था और वह अकेला ही अब अपनी ड्यूटी पर जा रहा था। नगर के बाहरी छोर पर जैसे-जैसे वह बढ़ रहा था अन्धकार का अधिकार और शीत-साम्राज्य उसी गति से उसके चारों ओर बढ़ता जा रहा था। उसके हाथ में एक अमरीकन टार्च थी। जिसे वह आवश्यकतानुसार जलाता और बुझाता था। अचानक कुछ दूर पर उसने एक परछाई-सी देखी वह सतर्क हुआ। उसे ऐसा आभास हुआ मानो कोई पेड़ के झुरमुटों में छिपता हुआ उसकी दृष्टि से बच कर भागना चाहता है। बलवन्त सिंह ने टार्च जलाई किन्तु कोई दिखाई न दिया। उसने अपनी संगीन दाहिने कन्धे से साध कर सामने की ओर तानी और तेजी से आगे बढ़ा। कुछ दूर और आगे बढ़ने के बाद उसे अपने पीछे की झाड़ियों में कुछ खड़खड़ाहट सुनाई दी। वह चौंका। उसने संगीन नीचे गिरा दी और टार्च को तुरन्त बुझा दिया। कमर की पेटी से रिवाल्वर निकाल कर उसने अपने हाथो में साधा और झपट कर झाड़ी की ओर लपका। देखा वहाँ कोई नहीं है। वह कुछ देर वहीं खड़ा रहा, फिर एक पेड़ पर कुछ दूर चढ़ा और अब उसने अपनी टार्च चारों ओर घुमाई। लगभग बीस फुट की दूरी पर एक सियार दिखाई दिया। वह पेड़ से नीचे उतरा। टार्च बुझा कर फिर आगे बढ़ा किंतु इसी क्षण उसने फिर एक परछाईं सी देखी इस बार उसने लपक कर उस छाया को अपनी बाहों में घेर लिया छाया

स्तब्ध थी। किसी प्रकार का विरोध नहीं था। उसने आभास लिया कि वह कुछ कंपित हैं। बलवन्त सिंह ने उसे छोड़ कर टार्च जलाई। उसने ऊपर से नीचे तक देखा। वह एक बर्मी महिला थी। महिला अचानक भागी, किंतु एक ही आदेश—रुक जाओ—के शब्द से वह शिलावत हो गई।

'कौन हो तुम ?;

'..............'

बलवन्त सिंह ने उसे ध्यान से देखा। वह एक अधेड़ युवती थी। उसने अपना पूर्ण शृंगार कर रखा था। उसके जूड़े में दो फूल लगे थे। उसके वस्त्रों से हीने की सुगन्ध आ रही थी। उसके ओंठ मूँगे से चमक रहे थे। उसके रेशमी वस्त्र बतला रहे थे कि वह किसी असाधारण रईस परिवार की युवती है। उसके गले की मोती-माला टार्च के श्वेत प्रकाश को पाकर इन्द्रधनुषी रंग फेंकती थी। सौंदर्य की सभी शिराएँ वहाँ थीं किंतु आँखों का पानी मर चुका था, लाज की चादर झीनी, बहुत झीनी हो चुकी थी।

'तुम्हारा क्या नाम है ?'

'......................'

'कहाँ रहती हो ?'

'...................'

'यहाँ क्यों आई ?' बलवन्त सिंह ने डपट कर पूछा। वह अवाक थी और अवाक रही। बलवन्त सिंह ने धीरे से पूछा, 'हिन्दुस्तानी समझती हो ?' उसने धीरे से स्वीकारात्मक सिर हिलाया।

'मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। डरो मत, मैं तुम्हें कोई नुकसान नहीं पहुँचाऊँगा। तुम कहाँ जा रही थी ?'

लम्बी साँस छोड़ कर बोली, 'नदी किनारे जा रही थी।'

'इरावदी को ?'

'हाँ।'

'इतनी रात को वहाँ क्या है ?'

'कुछ नहीं।'

'कुछ नहीं ! ! क्या मतलब है ? उत्तर दो, इतनी रात को वहाँ किससे मिलने जा रही हो ?'

'यह नहीं बता सकती।'

'क्यों ?' वह चीखा, 'तुम्हारी यह हिम्मत ! तुम्हें बताना होगा।'

'तुम कौन हो, पहले यह बताओ ?'

'मैं एक सिपाही हूँ। तुम्हारे देश में जापानी आततायियों के दमन के लिए भारत सरकार ने मुझे यहाँ भेजा है

'तो मैं किसी आततताई से मिलने नहीं जा रही हूँ।' अधेड़ युवती ने मुस्करा कर कटाक्ष किया।

'समझा' बलवन्त सिंह ने मुस्कराते हुए कहा, 'यह बात है। अभिसार हो रहा है, मुझे नहीं मालूम था। चलो मैं पहुँचा दूँ।'

'मैं अपने आप चली जाऊँगी, आप अपना रास्ता लीजिए।'

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'क्यों ?' कुछ निडर होकर बोली।

'क्यों क्या ? ज्यादा सर चढ़ने की कोशिश मत करो। नाम बताओ।'

'कुमकुम' सहमी हुई आवाज निकली।

'कुमकुम, हूँ ! तुम्हारा घर कहाँ है ?'

'.......................'

'तुम फिर मौन हो, मैं पूछता हूँ तुम कहाँ रहती हो ?

'थीरू में'

'थीरू गाँव में ?'

'हाँ'

'तुम्हारे पिता क्या करते हैं।'

'खेती।'

'और तुम क्या करती हो ?'

'कुछ नहीं।'

'कुछ नहीं ! पिता खेती करता है। गाँवों में रहता है और लड़की शहर वालों के भी कान काटती है।'

'आपका मतलब क्या है ?' काँपती आवाज के साथ प्रश्न हुआ।

'मेरा मतलब कुछ नहीं है। मैं तो समझ रहा था कि तुम शहर के किसी रईस की बेटी होगी। कपड़े तो ऐसे पहन रखे हैं, मानो कि....'

'तो आप चाहते क्या हैं ?'

'मैं जो जानना चाहता था, जान गया हूँ। तुम अवश्य किसी खतरनाक आदमी के चक्कर में पड़ गई हो। चलो देखूँ तो उसे, वह कौन है जिसने तुमको यह हसीन जामा पहना रखा है।'

कुमकुम शंकित दृष्टि से बलवन्त सिंह का मुँह ताकने लगी। उससे फिर प्रश्न हुआ—'तुम्हारा प्रेमी कोई विदेशी तो नहीं ?'

'विदेशी क्या ?'

'मेरा मतलब कोई जापानी तो नहीं है ?

'जापानी हाँ वे तो जापान के ही साहब हैं उसके मुख से निकल गया

'जापानी साहब है ! ! ! जरा इधर आओ ।' बलवन्त सिंह ने कुमकुम के कपड़े हाथों में मलते हुए कहा, 'सब जापानी सिल्क । अच्छा यह तो बताओ, रहते कहाँ है ?'

'यह मैं नहीं बता सकती ।'

'क्यों ?'

'मैंने उनसे कसम खाई है ।'

'भोली औरत और नागिन का काम ।'

वह मौन रही और बलवन्त सिंह ने पैंतरा बदल कर नरम शब्दों में कहा, 'तुम्हें नही मालूम ये जापानी साम्राज्य के स्वर्ग में बहकाए हुए वीर कितने मक्कार और खतरनाक हो गए हैं । तुम्हारे देश के कितने ही भागों में यह छिपे बैठे हैं और जो कभी भी देश को खतरे में डाल सकते हैं ।'

'देश खतरे में होगा, मेरा घर तो नहीं । मुझसे देश-बेश से क्या मतलब । मेरा साहब तो मुझे सब कुछ देता है । ये कपड़े और रुपये भी ।'

बलवन्त सिंह ने उसके उत्तर में अज्ञान और निश्छल भाव का आभास पाया । वह समझ गया कि कुमकुम कितनी भी सजी-धजी है किन्तु एक साधारण किसान की गँवार युवती से अधिक कुछ नहीं है । आगे पूछा, 'तुम्हारे पिता उस साहब को जानते हैं ?'

'हाँ, मेरे पिता उसका बहुत आदर करते हैं । जब भी रुपयों की कमी होती है वे मुझे उसके पास भेज देते हैं ।'

'तो तुम्हारे पिता ने उस साहब से प्रेम करने को कहा होगा ।' बलवन्त सिंह ने ताना मारा और क्रोध से अपने ओंठ काटे ।

कुमकुम ने थोड़ा लजा कर कहा, 'आप तो ऐसी बातें करते हैं कि....'

'हूँ, अच्छा चलो किधर चलती हो ।'

'फिर वही बात । मैंने आपको सभी बातें साफ-साफ बता दीं, फिर भी आप मेरे पीछे पड़े हैं । कृपया मुझे जहाँ जाना है जाने दें ।'

बलवन्त सिंह ने अत्यन्त साधारण रूप से कह दिया, 'अच्छा, जाओ । मैं तुम्हारा हाथ नहीं पकड़ूँगा ।'

कुमकुम अन्दर ही अन्दर घबड़ाती हुई अपने मार्ग पर आगे बढ़ी । बलवन्त सिंह ने उसका रास्ता छोड़ कर दूसरे मार्ग से उसका पीछा करना उचित समझा ।

कुमकुम ने कई बार पीछे पलट कर देखा, किन्तु बलवन्त सिंह वहीं चुप खड़ा दिखाई दिया । अब वह तेजी से दूर निकल गयी और बलवन्त सिंह ने उससे भी तेज चलते हुए दुसरे सामानांतर मार्ग से उसका पीछा किया । बलवन्त सिंह उस स्थान पर मोर्चा लेकर लड़ चुका था । वहाँ का पूरा नक्शा मोटे रूप में उसे याद था । कुमकुम इरावदी नदी के किनारे किनारे उत्तर की ओर बढ़ रही थी । वह भी उत्तर की ओर बढ़ता गया और धीरे धीरे किनारे की ओर बढ़ता रहा आगे जाने पर एक नाल

पास संतरी है। बंदूक हैं। रुपया है। नोटों की गड्डियाँ और सोने के गहने हैं। क्या यह सब बेकार है ?'

जापानी साहब के मस्तिष्क मे वह दृश्य घूम गया जब रंगून का सर्राफा बाजार लूटा गया था और सोने और चाँदी की लूट की पेटियों में बन्द करके इन खाइयो मे भर दिया गया था। उसने अपना माथा सहला कर कहा, 'तुम नहीं समझतों कुमकुम, जमाना कहाँ से कहाँ चला गया।'

कुमकुम मौन खड़ी रही।

'यह बताओ वह भारतीय और कुछ कहता था ?'

'हाँ, वह कहता था जापानी लोग बड़े खतरनाक हैं। वे देश को बहुत नुकसान पहुँचा सकते हैं।'

'हूँ, झूठ कहता था वह। सुनो वह बात करने के बाद किस तरफ गया ?'

'मैंने तो देखा नहीं। जब तक मैं उसे देख सकती थी वह एक ही जगह खड़ा रहा था।'

जापानी साहब चिंता में पड़ गया। उसकी मस्ती वहीं ढीली होने लगी। वह धीरे से बोला, 'वह बहुत चालाक सिक्ख मालूम होता है। वह उठा और वहाँ से नाले की ढाल की ओर बढ़ा। बलवन्त सिंह अब पर्याप्त निकट आ चुका था। कुमकुम पीछे-पीछे चलती हुई बोली, 'साहब क्या बात हुई ? मुझसे कोई भूल हुई ?'

जापानी कुछ नहीं बोला। वह अपने शस्त्रागार में घुसा और उसने अपनी बैटरी से रोशनी जलाई। कुमकुम ने उसके पीछे-पीछे उस शस्त्रागार में पहली बार पैर रखा। देखा चारों तरफ, रायफल, पिस्टल और कृपाणें टंगी हुई हैं। कुमकुम घबरा गयी। उसने सोचा—यह तो डाकुओं का सरदार है शायद। अब तक मुझे धोखा देता रहा है। वह बोली, 'साहब मुझे डर लग रहा है।'

'डर! डर काहे का ? मैं तो अभी मौजूद हूँ ?'

'साहब डर तो आपका ही....'

'कहो, कहो ना।'

'साहब आप ही से डर लग रहा है।'

'अरे मुझसे डर! आज यह नयी बात कैसी ?'

वह हँसा।

'साहब मुझे इस कमरे में डर लग रहा है।'

'हूँ, यह बात है। तुमको मुझसे नहीं शायद इन बंदूकों और कृपाणों से डर लग रहा है। अच्छा चलो, बाहर, मैं भी आता हूँ।'

'कुमकुम कमरे के बाहर आई और वह जैसे ही खाई के ऊपर आने लगी उसने एक परछाईं सी सामने खड़ी देखी। परछाईं तुरन्त ही बगल की एक झाड़ी में जाती दिखाई दी और कुमकुम ने पहचाना कि वह आदमी तो वही भारतीय सिपाही है

कुमकुम पुनः लौट पड़ी अन्दर की ओर, और जापानी साहब ने पूछा—'क्यों क्या बात है ?' कुमकुम निरुत्तर रही।

जापानी साहब ने एक चमड़े के बैग में दो हथगोले रखे। दो पिस्टलें अपनी कमर में कसीं और एक रायफल गले से लटकाई। बैग को लेकर बाहर आया। कुमकुम डरती हुई सी उसके साथ-साथ आगे बढ़ी। जापानी ने कुमकुम से कहा कि वह उसे उस ओर ले चले जहाँ वह भारतीय सिपाही मिला था। कुमकुम की साँस बड़ी तेजी से चल रही थी, उसने मन में सोचा अब क्या करे। वह भारतीय तो यहीं आ पहुँचा है। कुमकुम उसके पीछे-पीछे चलने लगी। जापानी ने उससे कहा,—'कुमकुम आगे चलो, हमको रास्ता दिखाओ।' कुमकुम बहुत परेशान हुई कि वह अब क्या करे ? जापानी ने कड़े शब्दों में कुमकुम को आज्ञा दी, 'चलो, सुनती क्यों नहीं।' कुमकुम अनायास ही उसके आगे हो गई और मुँह से कुछ नहीं बोली। कुमकुम के आगे होने के बाद कुछ ही क्षणों में गोली का फायर हुआ और जापानी तुरन्त वहीं गिर पड़ा। उसके मुँह से चीख निकली और बोला, 'धोखा, कुमकुम तुमने मुझे धोखा दिया, आह!'

कुमकुम कुछ क्षण के लिये स्तब्ध खड़ी हो, प्राणहीन सी हो गई और पीठ फेर कर देखते ही उसने बलवन्त सिंह को खड़ा पाया। कुमकुम बोली, 'साहब, मैंने धोखा नहीं दिया, धोखा दिया है इस फौजी ने। साब, वह देखो, यह वही सिपाही है।' जापानी ने कराहते हुए करवट बदली और खिसिया कर एक हथगोला उस सिपाही की ओर फेंका। गोला फटना था कि बलवन्त सिंह भी वहीं घायल होकर धड़ाम से गिरा। कुमकुम ऐसे भयंकर दृश्य की अभ्यस्त नहीं थी, अतः वह आप ही आप वहीं गिर पड़ी। थोड़ी देर बाद कुमकुम ने जब हिम्मत करके अपने जापानी साहब के निकट जाकर उसके हाथ को पकड़ा तो देखा वह मर चुका है। कुमकुम ने उसकी कमर से कटार निकाली और वह बलवन्त सिंह की ओर बढ़ी। बलवन्त सिंह बहुत थोड़ा घायल हुआ था। उसने देखा कुमकुम उसकी ओर बढ़ रही है। जैसे ही वह निकट आई, बलवन्त सिंह तुरन्त उठ बैठा और कुमकुम काँप उठी। उसके हाथ की कटार गिर पड़ी और वह शिलावत् खड़ी रह गई। बलवन्त सिंह ने बैठे ही बैठे कड़क कर कहा, 'मेरी टार्च ढूँढ़ो।' कुमकुम ने सेविका की तरह उसकी टार्च अपने पैरों से टटोल-टटोल कर खोजी और उठा कर उसे दी। बलवन्त सिंह ने पूछा, 'यहाँ कोई और जापानी भी रहता है ?' कुमकुम ने काँपते हुए कहा, 'हाँ एक और रहता तो था पर तीन दिन से उसका पता नहीं है।'

'वह कहाँ गया था ?'

'रंगून गया था

'क्या करने ?

'हाँ ।'

'क्या यह भी रंगून जाता था ?'

'हाँ, कभी-कभी जाता था ।'

'तुमसे इससे कैसे परिचय हुआ ?'

'...............'

'बोलो, जवाब दो, तुमसे इससे कैसे परिचय हुआ ।'

'..........'

'तुम इसे कितने दिन से जानती हो ?'

'लगभग साल भर से ।'

'हूँ' बलवन्त सिंह ने लम्बी साँस छोड़ते हुए कहा, 'इधर आओ, हमारा हाथ तो पकड़ो ।'

कुमकुम चुप खड़ी रही ।

'कुमकुम ! सुन रही हो । इधर आओ' दृढ़ शब्दों में उसने आज्ञा दी, 'मुझे खड़े होने को सहारा दो ।'

कुमकुम ने चुपचाप आगे बढ़ते हुए एकदम से भागना शुरू किया । बलवन्त सिंह ने तमन्चा हाथ में लेकर जोर से कहा, 'लौट आओ, नहीं तो गोली मार दूँगा ।' कुमकुम लौट पड़ी । उसने बलवन्त सिंह को सहारा दिया और बलवन्त सिंह लंगड़ाता हुआ उठ खड़ा हुआ । उसने अपनी टार्च से अपनी चोट देखी । पैर से खून बह रहा था । कुमकुम ने भी उसके घाव को देखा किन्तु बलवन्त सिंह की आँखों में आँसू नहीं देख पाई । बलवन्त सिंह ने कहा, 'मुझे सड़क की ओर ले चलो ।' कुमकुम ने बिना कुछ उत्तर दिए पूर्व की ओर बढ़ना शुरू किया । बलवन्त सिंह ने कहा, 'ऐसे नहीं, मुझे सहारा देकर उधर चलो ।'

'कैसे ?' कुमकुम ने पूछा और बलवन्त सिंह ने कुमकुम का मुँह आगे कर, पीठ की ओर से आपने दोनों हाथ उसके गले में डाल कर कहा, 'इन्हें तुम जोरों से पकड़ लो ।' कुमकुम ने हाथ पकड़ लिए । अब दोनों आगे बढ़े । जापानी के शव के निकट पहुँचे । बलवन्त सिंह ने अपनी टार्च जलाई और कुमकुम को आज्ञा दी कि वह उसके सारे शस्त्र उतार ले और उसकी जेब के सारे कागजात भी निकाल ले । कुमकुम ने आँसू बहाते हुए शव के सभी अस्त्र उतार कर अपनी कमर में उल्टे-सीधे खोंस लिए । जापानी की जेब से तीन कागज निकले । बलवन्त सिंह ने उन कागजों को जेब में रखा और कुमकुम को फिर उसी प्रकार हाथ पकड़ कर चलने की आज्ञा दी । कुमकुम ने कठपुतली की तरह यह काम सम्पन्न किया ।

रात समाप्त हो चली थी । भोर का तारा यह बता रहा था कि कुछ ही क्षणों में प्राची होने जा रहा है चारों ओर कोहरा कट रहा था कुमकुम का का सारा शरीर ठण्ड से काँपने सा लगा, किन्तु बलवन्त सिंह के सगठित हाथ उसकी

हथेलियों को गर्मी पहुँचा रहे थे। बलवन्त सिंह को कुछ सिहरन अनुभव होने लगी। उसका हृदय तीव्र गति पकड़ने लगा और वह कुमकुम के पीछे-पीछे चलते हुए लम्बी साँसें लेने लगा। कुछ ही पलों में प्रकाश बढ़ने लगा और बलवन्त सिंह ने कुमकुम और अपनी, दोनों की साँसों में धुआँ का रूप देखा। वह बोला,—'कुमकुम तुम्हारे मुँह से धुआँ निकल रहा है।' कुमकुम ऊपरी दाँतों से नीचे का ओठ काटती हुई बोली,—'हाँ मेरा दिल जो जल रहा है।' बलवन्त सिंह ने कहा, 'वाह—तासीर इश्क होती है दोनों तरफ जरूर, मुमकिन नहीं कि दर्द इधर हो, उधर न हो।—मेरी साँसों को देखो। मेरा दिल भी जल रहा है।' कुमकुम ने कहा, 'लज्जा नहीं आती, प्रेम की बातें करते। तुम सिपाही हो, तुम प्रेम का मूल्य क्या जानो।' बलवन्त सिंह को ठेस लगी। वह कुछ सँभला। वह हृदय की गति पर अधिकार करने का प्रयास करते हुए बोला, 'कुमकुम! वासना और स्वार्थ से उत्पन्न हुआ प्रेम वास्तविक प्रेम नहीं होता। तुम्हारा प्रेम उस जापानी से धन कमाने और नोटों की गड्डियाँ लेकर विलास पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए था। तुम्हारा और उसका सम्बन्ध ही क्या। वह अपनी मौत के दिन गिन रहा था और सोचता था लड़ाई तो हार ही चुका हूँ। फाँसी लगनी ही है, जितने दिन मौज से कट जाएँ अच्छा है। तुम्हारी सुकुमारिता और भोलेपन का उसने पूरा-पूरा लाभ उठाया। तुम्हें अभी तक यह नहीं मालूम हुआ कि उसका जापानी राज समाप्त हो चुका है। वह तो अब मात्र एक डाकू का ही जीवन बिता रहा था। यह भी अच्छा हुआ जो यह बात अभी मेरे ही तक है। सरकार को कहीं इसका पता लग जाए तो तुम और तुम्हारा बाप, दोनों ही फाँसी पर लटका दिए जाओगे। दुश्मन की सहायता के अभियोग में जो न हो जाय वह थोड़ा है।'

कुमकुम इन बातों को सुन कर कुछ बनती हुई बोली, 'क्या सचमुच वह धोखा दे रहा रहा था ?'

'हाँ! बिल्कुल धोखा! उसका मित्र जो दूसरा जापानी है, वह भी कहीं जंगल में अपना डेरा डाले होगा। आजकल रंगून में जो बड़े-बड़े डाके पड़ रहे हैं, यह काम ऐसे ही लोग करते हैं। तुम और तुम्हारे बाप दोनों आज ही जेल में बन्द किए जा सकते हो।'

कुमकुम काँप उठी। वह बोली, 'मगर ऐसा मत करिएगा मेरा बाप बूढ़ा है, मैं....मैं....मैं आपको भी खुश कर सकती हूँ यदि आप....'

'जीवन की प्रसन्नता कर्त्तव्य पालन में है, मक्कारी में नहीं।'

'क्या कहा ?'

'कुछ नहीं, तुम मत घबराओ! मैं कुछ भी रिपोर्ट नहीं करूँगा, किन्तु तुम्हें एक काम करना होगा।'

'वह क्या ?'

'तुम्हें उस दूसरे जापानी के पकड़ने में मेरी सहायता करनी होगी वह रंगून में अवश्य ही होटलों और कैफों म अपना रूप बदल कर आता होगा

'मैं, तुम्हारी सहायता करूँगी। क्या मैं अब घर जा सकती हूँ ?'

'चलो मैं तुम्हें पहुँचा दूँ और तुम्हारा घर भी देख लूँ।'

कुमकुम चुपचाप अपने घर की ओर खेत ही खेत होती हुई बढ़ी और बलवन्त सिंह ने उसका साथ किया। घर पहुँच कर बलवन्त सिंह ने कुमकुम के शरीर पर से सारे अस्त्र उतार कर अपनी कमर में कसे और रंगून की ओर लँगड़ाता हुआ चल दिया।

× × ×

लगभग एक सप्ताह बाद संध्या समय बलवन्त सिंह कुमकुम के घर आया। कुमकुम बाहर निकली। बलवन्त सिंह ने कहा, 'कुमकुम आज तुम्हें मेरे साथ होटलो मे चलना है। शहर के सभी प्रसिद्ध कैफों में चलेंगे। वह दूसरा जापानी तुम्हें तो जानता ही है। वह तुम्हें देखकर तुम्हारी ओर अवश्य खिंचेगा और मैं उसे तुरन्त गिरफ्तार करवा लूँगा।'

'आप तो बड़े खतरनाक आदमी मालूम पड़ते हैं।' कुमकुम ने एक नशीली मुस्कान के साथ कहा।

'हूँ, तुम मुझे आज नए रूप से पहचान रही हो। मुझे पहचानना मुश्किल है। उस दिन मुझे तुम्हारे भोलेपन पर दया आ गई नहीं तो....'

'नहीं तो एक गोली मेरे भी मार देते।' आँखों में शरारत भर कर वह बोली, 'मैं तो यूँ ही मर रही हूँ।'

'मुझ पर ! ! !'

'और किस पर।' कुमकुम ने कटाक्ष किया और बलवन्त सिंह अपनी मातृ-भाषा पंजाबी में बड़बड़ाया,

'तू पतित हो चुकी है।'

'क्या कहा आपने ?'

'कुछ नहीं, चलो घर से निकलो प्राण-प्यारी'

कुमकुम शीघ्र ही अन्दर से अच्छे से अच्छे कपड़े पहन कर बाहर आई। दोनो ही बाहर खड़ी जीप पर बैठ गये। जीप तेजी से चली और शीघ्र ही पगोडा रेस्तरां की ओर बढ़ने लगी। बलवन्त सिंह ने पूछा, 'कुमकुम, तुमने अपने बाप को उस दिन की कहानी बताई, कि नहीं ?'

'हाँ बताई थी।'

'क्या कहने लगे'

'वे तो कागज की तरह काँपने लगे। मुझे उन्होंने बीसियों गाली दीं, किन्तु जब मैंने कहा कि घबड़ाइए नहीं, आप पकड़े नहीं जाएँगे, सिक्क ने मुझ को वचन दे दिया है तो....'

'सिक्क क्या ?

'अरे आप, क्या आप सिक्क नहीं ?

बलवन्त सिंह हँसा, उसने कहा, 'सिक्क नहीं सिक्ख कहो।'

'अच्छा सिक्ख ही सही, मैं क्या जानूँ सिक्क और सिक्ख क्या है। मुझे तो जापानी साहब ने सिक्क ही बताया था।'

'तो क्या तुमने उससे मेरे विषय में कह दिया था कि तुम्हें रास्ते में मिल चुका हूँ।'

'हाँ मैंने तो कह दिया था।'

बलवन्त सिंह ने स्थिर होकर पूछा, 'कुमकुम ! तुम्हारे हृदय में क्या अब भी वही जापानी साहब समाया है ?'

'नहीं, नहीं बिल्कुल नहीं। मैं उससे प्रेम थोड़े ही करती थी।'

'तो अब तुम्हारा हृदय 'टू-लेट' है क्या ?'

'टू-लेट क्या ?'

'मेरा मतलब है, हृदय खाली है क्या ?'

'नहीं, वह तो....'

'वह तो क्या....?'

'मेरा मतलब है भरा है।'

'कौन है उसमें ?'

'आप' कुमकुम ने बलवन्त सिंह की आँखो में आँखें डालते हुए कहा।

'मैं, यानि मैं ?' बलवन्त सिंह मुस्कराया।

'जी, आप, आप ही जिसने मुझको एक बहुत बड़े चक्कर से बचाया। उस बदमाश जापानी से मुक्त कराया। मैंने आज तक किसी सिपाही को इतना रूखा नहीं पाया जितने आप है और सच मानिए मैं आपके इस रूखेपन पर ही निछावर हूँ।'

'इस समय बड़ी समझदारी की बातें कर रही हो।'

'ठोकर खाने पर अक्ल आ ही जाती है।'

'तो मुझे भी कुछ सुनाओ अपनी ठोकरों की कहानी, तुम्हारे अनुभव से मैं भी लाभ उठा लूँ।'

'मेरे साथ क्या क्या नहीं हुआ। कैसे कहूँ। आज तक मुझे कोई ऐसा मर्द नहीं मिला जिस से मैं कुछ कहने की हिम्मत करती। जो मिला वह स्वार्थ में डूबा और वासना का भूखा। मेरी सुनने की किसको फुर्सत। भगवान ने आपको मेरे पास एक वरदान के रूप में भेजा है। मैं अपना हृदय का बोझ हल्का कर रही हूँ।' जीप शहर में पहुँच चुकी थी।

अब तुम मत घबड़ाओ। मैं तुम्हारे हृदय की टीस को समझता हूँ। चलो इस समय हम अपना काम कर डालें फिर....'

जीप पगोडा रेस्तरां पर आ पहुँची। बलवन्त सिंह ने कुमकुम को उतरने की आज्ञा दी वह भी उतरा और दोनो साथ-साथ कैफ हाल में पहुँचे चारो ओर हंसी के कहकहे भरे जा रहे थे सिंह कुमकुम के साथ एक अकली मेज पर

बैठ गया। बैरे ने आकर तुरन्त आर्डर माँगा। थोड़ी ही देर में दो प्लेटों में खाने की सामग्री और काफी आ गई। बलवन्त सिंह ने कुमकुम से कहा लो खाओ और जरा ध्यान से देखो कहीं वह जापानी बैठा तो नहीं है। कुमकुम ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई किन्तु, वहाँ कुछ अंग्रेजों, कुछ भारतीयों, कुछ चीनियों और बरमियों के सिवा और कोई दिखाई न दिया। खाना समाप्त हुआ और वे दोनों वहाँ से उठकर फिर जीप पर आ बैठे। बलवन्त सिंह ने कुमकुम से पूछा कि क्या वह कभी जापानियों के साथ किसी होटल में गई है। उसने कहा कि 'निपन' होटल में कई बार जा चुकी है। बलवन्त सिंह ने उससे उस होटल का रास्ता पूछा तो वह बोली कि उसे रास्ता याद नहीं है। बलवन्त सिंह ने अपनी जीप बढ़ाई और अनुमान से ही रंगून की माल रोड की ओर मोड़कर कुमकुम से कहा कि वह बिल्डिंग पहचानने का प्रयास करे। कुछ ही दूर चलने पर कुमकुम बोली, 'वह है 'वह है 'निपन' होटल।' जीप बिल्डिंग के नीचे आकर खड़ी हो गयी। बलवन्त सिंह की दृष्टि जब होटल के बोर्ड पर पड़ी तो उस में लिखा देखा—'न्यू वेस्टएण्ड होटल।' उसे समझने मे देर न लगी कि होटल का नाम अंग्रेजों की जीत हो जाने के कारण बदल दिया गया है। वह कुमकुम को साथ ले कर होटल मे गया। हाल में अंग्रेजी बैण्ड धीरे-धीरे बज रहा था। हाल के प्रवेश द्वार के बाईं ओर होटल मैनेजर की कुर्सी लगी हुई थी। कुमकुम को देखते ही उसने पहचान लिया और उसे सलाम किया। कुमकुम ने तुरन्त अभिवादन किया और बलवन्त सिंह से धीरे से कहा यह होटल का मैनेजर है और ये उन जापानियों को जानता है। बलवन्त सिंह ने गम्भीर हो कर केवल 'हूँ....' किया। वे दोनों एक स्थान पर बैठे। कुमकुम ने सतर्क होकर चारों ओर दृष्टि घुमाई। कुछ देर काफी आदि पीने के बाद कुमकुम ने तीन व्यक्तियों को अपनी मेज के थोड़ी दूर पर देखा। यह तीनों फ्रेंच कट (कूर्चादार) दाढी रखाए थे और ऊपर से नीचे तक फ्रेंच ही बने थे। कपड़े और मिलिट्री के बिल्ले सभी फ्रेंच सैनिकों के थे। कुमकुम ने घूर कर देखना शुरू किया और इतनी ही देर में उन तीन व्यक्तियों में से दो ने उसकी ओर देखा। वे कुमकुम को एक सिक्ख फौजी के साथ देखकर कुछ भयभीत हुए किन्तु फिर उन्होंने सोचा कुमकुम तो बाजारू है ही, शायद इस सिक्ख को भी फाँस लिया हो। एक ने कुमकुम को आँखों से इशारा किया। इशारा पाते ही कुमकुम की शंका दूर हुई और वह पूर्णतया समझ गई कि वे तीनों जापानी है। कुमकुम ने पैर टकरा कर बलवन्त सिंह को इशारा किया कि शिकार सामने है। कुमकुम तुरन्त ही उन लोगों के पास पहुँची और बलवन्त सिंह बाहर की ओर गया। कुमकुम उन तीनों से परिचित थी, वह वहाँ बैठती हुई बोली, 'यह सिक्ख लोग भी निरे बुद्धू होते हैं। आज चार दिन से नित्य यह मेरी सेवा कर रहा है, किन्तु इस के सामने केवल लम्बी साँसें खींचने और झूठी मुस्कान बिखेरने के और कोई भी बात मैंने नहीं होने दी आज इसे ड्यूटी पर जाते-जाते मैंने रोक लिया और यहाँ पकड़ ले आई अभी वह जो बाहर गया है, अपनी जान बचा कर ड्यूटी पर गया है

कुमकुम की बातें सुन वे तीनों जापानी हँसने लगे और तुरन्त ही उठ कर उससे अपने लोगों के साथ चलने को कहा। कुमकुम ने कहा, 'जरा कुछ बढ़िया माल खा-पी लिया जाए।' उन तीनों ही ने समर्थन किया। घण्टी बजते ही बैरा हाजिर हुआ और इसी समय होटल के हाल में बड़ी जोरों से जूतों की चरमराहट सुनाई दी। जापानियों ने देखा—लगभग ५० सिपाही रायफलें लिए खड़े हैं। जापानियों ने अपनी पिस्टलें जसे ही निकालनी चाहीं, वहाँ हवा में एक धमाका हुआ और बलवन्त सिंह ने आगे बढ़कर कहा, 'हेण्ड्स अप।' तीनों ही जापानी गिरफ्तार हो गए। कुमकुम को किसी ने भी हाथ न लगाया। तीनो ही जापानी बर्छे से भी तीखी दृष्टि से कुमकुम को देखने लगे। उन्होंने अपने दाँत पीसे, किन्तु अब सब व्यर्थ था।

सिपाही उन जापानियों को पकड़ कर बाहर की ओर ले गए और बलवन्त सिंह अपनी जीप गाड़ी पर आ बैठा। कुमकुम भी उसी पर आकर बैठ गयी। जीप चली। बलवन्त सिंह ने मुस्करा कर कुमकुम का कंधा थप-थपाया। कुमकुम के सिहरन हुई। बलवन्त सिंह बोला, 'तुम ने तो कमाल कर दिया कुमकुम। मुझे बहुत बड़ी सफलता प्रदान करवाई। मैं तुम्हें तुम्हारे जुर्म से मुक्त ही नहीं करवाऊँगा, बहुत-सा इनाम दिलवाऊँगा। सरकारी नोटों से तुम्हारा घर भर दूँगा।'

'लेकिन....लेकिन मुझे तो कुछ नहीं चाहिए। मैं अपना जीवन अब नए ढंग से व्यतीत करना चाहती हूँ। अपने गाँव में बहुत बदनाम हूँ। मैं....मैं तो आपका आश्रय चाहती हूँ।'

'कुमकुम....।'

'नहीं मैं अपनी सम्पत्ति, सोना चाँदी और तमाम गहने जो मुझे उस जापानी से मिले हैं सब आपको सौंप दूँगी किन्तु आपको छोड़ नहीं....'

'क्या तुम्हें उस जापानी ने गहने भी भेंट किये थे ?'

'हाँ बहुत प्रकार के।'

'तो वे अवश्य लूट के गहने होंगे।'

कुमकुम कुछ क्षण मौन रही। फिर बोली, 'आप कुछ स्वीकार न करें, किन्तु मुझे इस गाँव से कहीं और ले चलें, मैं....'

'कुमकुम, मैं तो एक सिपाही हूँ। कानून के कड़े परदे में रहने वाला।'

'तो क्या सिपाही किसी का उद्धार नहीं करते क्या ?'

जीप कुमकुम के घर पर पहुँच चुकी थी। उसे रोकते हुए बलवन्त सिंह ने कहा 'उतरिए।'

कुमकुम ने आश्चर्य से सिपाही की ओर देखा और नीचे उतरी। सिपाही ने जीप स्टार्ट करते हुए कहा, 'सिपाही जन साधारण की सेवा के लिये है, व्यक्ति विशेष का उद्धारक बनने के लिए नहीं। यह कम नहीं है कि बिना दण्ड तुम्हें तुम्हारे घर पर लाकर छोड़ दिया जा रहा है ❑

प्रश्न, मर्यादा का

नरेन्द्र का इस वर्ष मंसूरी जाना निश्चित था, किन्तु कालिज बन्द होने के पूर्व नीरजा की मुलाकात ने नरेन्द्र के लिये मंसूरी का आकर्षण और बढ़ा दिया। उसने नीरजा से सुना कि वह मंसूरी के एक मान्टेसरी स्कूल में अध्यापन का कार्य कर रही है। उसकी नियुक्ति का कारण नरेन्द्र के पिता राजेन्द्रनाथ थे, किन्तु यह बात न तो नीरजा ने ही उससे बताई और न उसके पिता ने ही उसे यह बताने की आवश्यकता समझी कि उन्होंने नीरजा नामक किसी युवती को अपने प्रभाव से नौकरी दिलाई है। राजेन्द्रनाथजी गम्भीर व्यक्ति थे और वे किसी भी आदमी की आवश्यकता को समझ लेने के बाद उसकी पूर्ण सहायता करते थे। नीरजा ने जब राजेन्द्रनाथजी से अपने प्रार्थना-पत्र पर सिफारिश लिखवाई थी तो यही कहा कि वह नरेन्द्र की सहपाठिन रही है, किन्तु बाकी बातें सत्य से परे थीं। उसने यह नहीं बताया कि वह कानपुर के डा० प्यारेलाल की लड़की है, उसने तो यही कहा था कि उसके पिता एक साधारण मुंशी है जो अपने परिवार का भरण-पोषण अत्यन्त कठिनाई से कर रहे हैं और यदि उसकी नौकरी लग जायगी तो वह अपने भाई बहनों की कुछ सहायता कर पायेगी।

नरेन्द्र से उसकी भेंट लखनऊ के मेफेयर सिनेमा में हुई थी और तभी नरेन्द्र से पूछने पर उसे ज्ञात हुआ था कि वह विद्यान्त डिग्री कालिज में प्राध्यापक है। नीरजा ने सहज ही में नरेन्द्र को मंसूरी आने का आमन्त्रण दिया था और नरेन्द्र ने स्वीकृति प्रदान कर दी थी।

किंगक्रेग बस-स्टैण्ड पर नरेन्द्र निश्चित तिथि पर पहुँचा और नीरजा ने लपक-कर उसका स्वागत किया। पहाड़ी कुलियों में से एक ने नरेन्द्र का सामान अपनी पीठ पर बाँधा और नीरजा प्रसन्नता के साथ अपने कॉटिज में पहुँची। लण्डौर बाजार से कुछ दूर एक रम्य स्थान पर उसकी काटिज थी। नरेन्द्र ने भरसक चाहा कि वह किसी होटल में टिके किन्तु नीरजा कब मानने वाली थी? सामान रखाते ही कुली को पैसे नीरजा ने दे दिये।

काटिज के पीछे की ओर नीरजा ने एक छोटी-सी फुलवारी लगा रखी थी। नरेन्द्र के साथ जब सुबह चाय पी चुकी तो उसने फुलवारी में प्रवेश किया। वहाँ अजीब प्रकार के अंग्रजी फूल लगे थे नरेन्द्र एक गुच्छेदार फूलों के पौध के पास बैठ-

कर ध्यान से देखने लगा । नीरजा ने सहज रूप से कहा—'यह सिलपाड़ा है । हिमालय की तराई में विशेष रूप से फूलता है ।' नरेन्द्र मन-ही-मन दुहराने लगा—'सिलपाड़ा . सिलपाड़ा', और तभी उसकी दृष्टि एक दूसरे फूल पर पड़ी और पूछा, 'यह कौन-सा फूल है ?' नीरजा ने मुस्कराते हुये कहा—'बौम्बैक्स !' 'बाम्बैक्स क्या ?' नरेन्द्र सहज ही पूछ बैठा और तभी नीरजा ने कहा—'अरे तुम तो फूलों से बहुत अपरिचित हो । देखो, यह है 'एलथेर ।' नरेन्द्र ने दोहराया—'एलथेर ।' वह मन-ही-मन दुहराने लगा—'सिलपाड़ा, बाम्बैक्स, एलथेर ।' नीरजा ने एक और नया नाम लिया 'मैग्नोलिया गेण्डी ।' नरेन्द्र ने कहा—'मैग्नोलिया गेण्डी ।' नीरजा बोली—'और यह है 'डालिया ।' नरेन्द्र ने कहा—'अच्छा यह है 'डालिया'—और नीरजा फिर बोली—'देखो, इसको कहते हैं 'ग्लाडियम ।' नरेन्द्र ने कहा—'रुको भाई, तुम तो सब गड़बड़ कर दोगी । मुझे फिर से नाम याद करने दो—'सिलपाड़ा, बाम्बैक्स, एलथेर, मैग्नोलिया गेण्डी, डालिया, ग्लाडियम ।'

'वन्डरफुल'—नीरजा ने कहा—'तुम्हारी स्मरण-शक्ति कमाल की है ।

नरेन्द्र बोला—'अभी यहाँ कुछ फूल और बचे हैं, जरा उनका नाम तो बताओ ! 'नीरजा ने कहा—'अब कौन-सा बचा है ? ये सारे पेड़ तो 'रोज' गुलाब के है और यह, यह है सूरजमुखी याने सनफ्लावर ।' नरेन्द्र ने कहा—'सनफ्लावर ।' वह अपनी दृष्टि नीची करके—'सनफ्लावर', 'सनफ्लावर' करता रहा और नीरजा उसका अभिनय देखने लगी, किन्तु इसी क्षण नरेन्द्र ने नीरजा की ओर उँगली उठाकर पूछा—'और यह कौन फूल है ?' नीरजा विस्मय मिश्रित लज्जालु नेत्रों को नीचे झुकाये कुछ कहना ही चाहती थी कि नरेन्द्र ने बड़े रागात्मक लहजे में कहा—'यह तो नीरजा है—नीरजा यानी कुमुदिनी ।' उसने फिर दुहराया—'नीरजा—यानी कुमुदिनी किन्तु यह पहाड़ों पर कैसे आ गयी ?'

नीरजा ने पहले तो सोचा कि वह सारी बात बता दे, किन्तु फिर वह बात को टालकर बोली—'यहाँ क्या आप पहली बार आये हैं ?' नरेन्द्र समझ गया कि नीरजा उसकी बात टाल रही है, किन्तु फिर भी उसने उसके प्रश्न का उत्तर दिया—'बिल्कुल पहली बार ।'

'तो यहाँ का माल रोड न देखा होगा ।'

'कहाँ देखा ? पहली बार तो आया हूँ ।'

'मैं आपको मंसूरी घुमाऊँगी । लाल तिब्बा, गनहिल, माउसी फाल, बैण्ड-स्टैण्ड, कुलड़ी बाजार, हैपी वैली ।'

'यह लाल तिब्बा क्या है ?'

अरे, यहा की सबसे ऊँची चोटी पिकनिक के लिए लोग जाते हैं

'तो हम लोग भी पिकनिक करें

'हाँ-हाँ, क्यों नहीं ? यह सम्पूर्ण मंसूरी ही 'पिकनिक' के आधार पर बसा है। हम लोग सुबह का भोजन करके लाल तिब्बा पर चलेंगे।'

नरेन्द्र नीरजा की बात पर सन्तुष्ट हुआ किन्तु अन्दर-ही-अन्दर वह यह सोचकर परेशान था कि नीरजा मंसूरी में आकर नौकरी क्यों कर रही है, और वह भी बिल्कुल अकेले।

भोजन के बाद नीरजा और नरेन्द्र लाल तिब्बे की ओर चल पड़े। कुछ दूर सघन घाटियों के सौन्दर्य का निरूपण करने के बाद नीरजा ने एक हाथ-रिक्शा किया और पहाड़ी कुली दोनों को बिठलाकर तेजी से भाग चले। लाल तिब्बा दूर था। रास्ता लम्बा था, किन्तु न जाने क्यों नीरजा और नरेन्द्र बहुत देर तक मौन ही रास्ता काटते चले गये। अब लाल तिब्बा निकट था, चढ़ाई अधिक होने के कारण उन्होंने रिक्शा छोड़ दिया। इस बार नरेन्द्र बहुत सतर्क था, इसलिये रिक्शे के पैसे उसी ने दिये। नीरजा यह कहती ही रह गयी कि वह उसका 'गेस्ट' है।

नरेन्द्र और नीरजा एक बेंच पर जा बैठे। नरेन्द्र कुछ क्षण तक इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने के बाद बोला, 'तुम मंसूरी में कैसे रह रही हो ? बिल्कुल अकेले ?'

'क्या बताऊँ ?'

'यह तो विस्मय की बात है, बताओ न ! मैं एक क्षण यदि मंसूरी को देखता हूँ तो दूसरे क्षण तुम्हें ! इस परदेश में तुम्हें अकेले रहने की क्या आवश्यकता पड़ गयी ? इतना सम्पन्न घर............।'

'हाँ नरेन्द्र कभी-कभी सब कुछ होते हुये भी उसे त्यागना पड़ता है।'

'ऐसा क्यों ?'

'घटना पिछले वर्ष की है। मेरा विवाह लखनऊ के एक एम० बी० बी० एस० डाक्टर से सम्पन्न होने को हुआ। मेरे होने वाले पति के पिता एक नामी और विख्यात समाज-सेवी थे। पिताजी ने ऐसे सम्पन्न घर में सम्बन्ध जोड़ पाने में सफल होकर अपने को धन्य समझा.......................।'

'तो फिर ! चुप क्यों हो गयीं ?'

'चुप क्या, यह सम्बन्ध २५ हजार नकद रुपयों के दहेज पर तय हुआ।'

'२५ हजार !'

'हाँ'

'किन्तु तुम्हारे पिता के लिये यह कोई बड़ी रकम नहीं थी।'

'मैं मानती हूँ, और इसीलिये वे तैयार भी हो गये थे किन्तु....।'

'किन्तु क्या ?'

'मुझे पसन्द नहीं था कि दहेज दिया जाय। मैं सिद्धान्त इस प्रकार के विवाह को सहन नहीं कर सकती थी लड़का यदि बड़े घर का है तो इसका अर्थ यह नहीं कि

लड़की का कोई मूल्य ही न किया जाय। मैं किससे कम हूँ ? २५ हजार की रकम मेरे किस कुसूर का जुर्माना है ?'

'तुम भी क्या बात करती हो ? अरे दुनिया में सदा से यही होता आया है और जब तुम्हारे पिता सरलता से यह कर सकते थे तो असमंजस कैसा ?'

'यह कोई बात नहीं, बात यह है कि सिद्धान्ततः यह बात गलत है।'

'किन्तु तुम अकेले इस व्यवस्था के विरुद्ध कैसे लड़ोगी ?'

'तुम्हें नहीं मालूम, कानपुर में हम लोगों ने, अर्थात् मेरी जैसी कुछ अन्य युवतियों ने कुछ प्रौढ़ महिलाओं को लेकर एक 'नारी-कल्याण-समाज' बनाया था और मैं उसकी मंत्राणी निर्वाचित हुई। इस समाज के अन्तर्गत दहेजप्रथा का बहिष्कार भी एक प्रस्ताव द्वारा स्वीकृत है।'

'तो यूँ कहो कि मंत्राणी महोदया ने अपने पद के प्रति प्रतिबद्धता निभाई।'

'प्रतिबद्धता का प्रश्न तो था ही किन्तु मेरे पिता सम्पन्न है, वे इतना रुपया खर्च कर सकते हैं फिर भी वे इस प्रकार के शर्तनामें क्यों....'

'मैं समझ गया, किन्तु यहाँ कैसे आ बसीं ?'

'मैंने जब यह बात सुनी तो पिता जी से मैंने दहेज देने का विरोध किया। वे मेरी बात सुनने को तैयार न थे। विवाह के दिन निकट आते गये। परिस्थिति गम्भीर होती गयी। मैंने अपने बच निकलने का जब कोई भी मार्ग न देखा तो समाचार पत्रो मे अध्यापिकाओं की आवश्यकता के विज्ञापन देखे और मुझे यहाँ मान्टेसरी स्कूल का विज्ञापन पढ़ने को मिला। मंसूरी कानपुर से दूर है। मैंने सोचा—यहाँ पहुँचकर कुछ समय के लिये इस बंधन से बचा जा सकता है। मैंने प्रार्थना-पत्र भेज दिया और सौभाग्य से नियुक्ति भी हो गयी। मैं अपने घर से तिलक जाने के कुछ समय पूर्व ही यहाँ आ गई थी।'

'तो तुम्हारे पिता को तुम्हारा पता नहीं मालूम ? तुम घर से भागी हुई हो ?'

'यं ही समझ लो।'

नीरजा ने 'पिकनिक' में लायी हुयी डोलची से एक अखबार निकाला और उसमें एक विज्ञापन पढ़ाती हुयी बोली—'जब घर से चली थी तो घर में एक पत्र छोड़ आयी थी कि मैं अपने किसी प्रेमी के साथ नही भाग रही हूँ। मुझे इस विवाह से घृणा है और मैं महिलावर्ग पर पुरुषों के अत्याचार को सहन नहीं कर सकती। मुझे जब भी कोई योग्य पात्र मिलेगा, जो महिलाओं को सम-अधिकार देना आवश्यक समझता हो तो मैं विवाह कर लूंगी।'

नरेन्द्र ने विज्ञापन पढ़ा—'बेटी नीरजा, तुम जहाँ भी हो घर चली आओ। तुम्हारा विवाह तुम्हारी अनुमति से ही करूंगा घर मे सब परेशान हैं घर की लाज

'नहीं, मैं नहीं गयी। विज्ञापन, विज्ञापन ही होता है। यह घर की ओर से प्रकाशित है तो क्या हुआ ? कुछ झूठ इसमें भी है।'

'क्या मतलब ?'

'मतलब यह कि मेरी सहेली का पत्र जो मुझे अलग से प्राप्त हुआ है, उसमे यह लिखा है कि मेरे पिता जी ने कसम खाई है कि मुझे वे उसी एम० बी० बी० एस० डाक्टर से ब्याहेंगे। वे मेरे ऊपर बहुत जोर से किटकिटाये हुये हैं। मैं पूछती हूँ उनका अपमान-अपमान है और सम्पूर्ण नारी जाति का अपमान-अपमान नहीं। आखिर लड़के वाला रुपया ले तो क्यों ले, क्या उसे पत्नी की आवश्यकता नहीं है ?'

नरेन्द्र एक दृष्टि से नीरजा को देखता रहा और नीरजा कहती गयी— 'ताली दोनों हाथ से बजती है। समाज के निर्माण में आधे से अधिक हाथ नारी का रहा है। मैं नहीं चाहती मेरे साथ विवाह करके कोई मुझ पर एहसान करे और ऊपर से २५ हजार रुपया जुर्माना ले।'

नीरजा का चेहरा लाल हो गया था। नरेन्द्र एक टक उसको देखता रहा और फिर धीरे से मुस्काकर बोला—'बस इतनी-सी बात !'

नीरजा चिढ़ गयी। उसने तो गम्भीरता से समस्या रखी और वह कहता है— 'बस इतनी-सी बात।'

नीरजा ने मुँह बिचका दिया और नरेन्द्र हँसते-हँसते लोट-पोट हो गया। नरेन्द्र ने डोलची में हाथ डालते हुये कहा—'मुझे तो भूख लगी है, लाओ कुछ खाया जाय।'

नीरजा ने लीचियों का गुच्छा और दो-चार दशहरी आम निकालकर रख दिये। नरेन्द्र ने लीचियाँ खाते हुये कहा—'तुम पिछले महीने 'फेयर' में जब मिली थी तो क्या अपने घर कानपुर नहीं गयी थीं ?'

'नहीं।'

'तो तुमने अपनी सहेली के पत्र पर इतना विश्वास कर लिया और पिता के विज्ञापन पर कुछ भी नहीं।'

'कैसे करती ? मैं लखनऊ में स्थिति को समझने ही तो गयी थी। मालुम हुआ कि अभी भी उस डाक्टर महोदय का विवाह नहीं हुआ है और मेरे पिता अपनी बात रखने की शान में दो हजार रुपये देकर उनसे मेरी मंगनी कर चुके हैं।'

'यह तो बड़ी अजीब-सी स्थिति है। किन्तु क्या तुम अब अपने घर जाओगी ही नहीं ?'

'कैसे जाऊँ ? तुम्हीं बताओ न !' प्रश्न, मर्यादा का है।

नरेन्द्र ने लीचियों को समेटकर डोलची में रख दिया और बोला—'मंसूरी की कौन-सी चीज प्रसिद्ध है।'

नीरजा ने तिरछी दृष्टि से नरेन्द्र को देखा नरेन्द्र के चहरे पर हल्की

मुस्कराहट खेल रही थी। उसने डोलची में आम रखने शुरू किये तो नरेन्द्र ने कहा—'तुम नहीं खाओगी कुछ ?'

'मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता।'

नरेन्द्र ने चुपचाप डोलची उठा ली और बोला—'चलो अब लौट चलें।'

नीरजा उन्मन-सी उठी और नरेन्द्र के पीछे चल पड़ी। उन दोनों ने जहाँ पर रिक्शा छोड़ा था, वहीं पर आकर खड़े हुये तो देखा वही रिक्शा वहाँ अब भी खड़ा है। उन लोगों को देखते ही कुलियों ने रिक्शा खींचकर उनके सामने किया और उनसे बैठने को कहा। नीरजा रिक्शे पर बैठ गयी। नरेन्द्र भी चुपचाप उसके बगल में बैठ गया। रास्ते भर नरेन्द्र चुप बैठा चला आया। नीरजा उसके इस व्यवहार को देखकर विस्मय में पड़ गयी। उसने इतना गम्भीर पुरुष देखा ही नहीं था। नरेन्द्र भी कैसा आदमी है ? रास्ता समाप्त हुआ। नीरजा और नरेन्द्र कालिज के सामने आकर उतर पड़े। नरेन्द्र चुपचाप फुलवारी में चला गया। नीरजा मौन, नरेन्द्र की अद्भुत मुद्राओं का अध्ययन करती रही।

नरेन्द्र का हाथ गमले में लगे एक पेड़ पर पड़ा और उसने अपना सिर खुजलाया। नीरजा ने अपने-आप ही कहा—'इसे डालिया कहते हैं।' नरेन्द्र हँसता हुआ फुलवारी के बाहर आ गया और नीरजा से पूछ बैठा—'क्या तुम आजीवन कुँवारी ही रहोगी ?'

नीरजा मुँह फेरकर बोली—'तुम तो जैसे मूर्ख हो। मैंने इतनी बातें की, उससे क्या कहीं से भी ये आभास मिलता है कि मैं कुँवारा जीवन व्यतीत करूँगी। मालूम होता है फूलों के नामों के साथ तुम सब-कुछ भूल गये।'

नरेन्द्र ने अपना मत्था अपने हाथों से रगड़ा और बोला—'मुझे सब याद है.... देखो बाम्बैक्स, सिलपाड़ा, एलथेर, मैग्नोलिया गेण्डी, ग्लाडियस, सनफ्लावर और कमलिनी—नीरजा !'

'ओह यह बात ! तो नीरजा भी याद है !'

'हाँ !'

'और....'

'और वह पत्र भी—'

'कौन-सा ?'

'मैं अपने किसी प्रेमी के साथ नहीं भाग रही हूँ। मुझे जब भी कोई ऐसा योग्य पात्र मिलेगा जो महिलाओं को सम अधिकार देना आवश्यक समझता हो, मैं विवाह कर लूँगी।'

'नरेन्द्र यू आर वण्डरफुल मैन

नरेन्द्र चुप होकर एक कुर्सी पर बैठ गया और नीरजा ने उसकी कुर्सी के चारो ओर एक चक्कर लगाया।

'नरेन्द्र !'

'हूँ !'

'क्या तुम भी महिलाओं को समान अधिकार देना आवश्यक नहीं समझते ?'

'यह तुमसे किसने कहा ?'

'तो फिर इतने मौन क्यों हो ?'

'मैं सोच रहा हूँ तुम्हारी वह बात कि तुम अपने किसी प्रेमी के साथ नहीं भाग रही हो, गलत साबित न हो जाय।'

'नरेन्द्र !' नीरजा वहाँ से हटकर दूसरे कमरे में चली गयी। नरेन्द्र ने पीछे घूमकर देखा तो नीरजा वहाँ नहीं थी। वह वहाँ से उठकर बाहर चला गया।

दिन भर बीत गया किन्तु नरेन्द्र नीरजा की काटिज में नहीं आया। नीरजा बहुत परेशान हुई। वह अपने को कोसने लगी कि उसने थोड़ा भी संयम से काम नहीं लिया। छिः वह कितनी निर्लज्ज है। नरेन्द्र कितना गम्भीर है। जैसा पढ़ाई के दिनो मे गम्भीर था, उससे भी अधिक। जाने कहाँ गया है। अभी लौटा नही। मैं अपने प्रेमी के साथ नहीं भागी हूँ, वह इसे प्रमाणित करना चाहता है। ठीक ही तो है। किन्तु वह अभी तक आया क्यों नहीं ? वह नरेन्द्र को ढूँढ़ने निकल पड़ी और काटिज मे चौकीदार से कह गयी यदि मेहमान आयें तो उनसे कहना कि मैं नौ बजे तक आ जाऊँगी।। नीरजा काटिज से बाहर हुई और नरेन्द्र वहाँ आया। चौकीदार ने अपनी मालकिन की बात नरेन्द्र से कह दी। नरेन्द्र ने पूछा कि नीरजा ने और कुछ तो नही कहा। चौकीदार बोला,—'वह बड़ी देर से शायद आपकी प्रतीक्षा में थी।'

नरेन्द्र ने अपना सामान उठाते हुए कहा कि वह एक होटल में जा रहा है। चौकीदार ने नरेन्द्र के हाथों से सूटकेस और होल्डाल लेकर अन्दर के कमरे में रख दिया और बोला,—'जब मालकिन आ जायें तब जाइयेगा।' नरेन्द्र अधिक न बोल सका। थोडी ही देर में नीरजा आ गयी। चौकीदार ने सारी बात बता दी। नीरजा ने पूछा,—'मुझसे कोई भूल हो गयी है क्या ? मुझे क्षमा करना। यह चौकीदार क्या कह रहा है ?'

नरेन्द्र चुप रहा। नीरजा ने कहा,—'आप बोलते क्यों नही ? मेरी क्या भूल है ?'

'कुछ भी तो नहीं। मैं....मैं सोच रहा था....।'

'क्या सोच रहे थे ?'

'कुछ नहीं, केवल यही कि मुझसे कहीं कोई भूल न हो जाय। मेरे लिये रात को यहाँ रहना

नरेन्द्र तुम हमारे लिये नये नही हो और नीरजा ने चौकीदार को बुलाकर

कहा—'आपका बिस्तरा खोल दो।' नरेन्द्र चुप रहा। नीरजा ने भोजन की व्यवस्था की। नरेन्द्र ने बड़े प्रेम से खाना खाया। नीरजा चाहती थी कि वह नरेन्द्र से अपने सह-पाठियों के विषय में कुछ और बातें करे, किन्तु नरेन्द्र जिस मुद्रा में बात कर रहा था उससे उसकी हिम्मत न हुई। नरेन्द्र खाना खाकर जब अपने बिस्तर पर आया तो उसने देखा नीरजा ने स्वयं कुछ नहीं खाया ! वह सब बर्तनों को समेट कर रख रही है।

'तुम नहीं खाओगी ?'

'मैं तो पहले ही खा चुकी।'

'झूठ बात है। मैं भूल गया, नहीं तो साथ में ही तुम्हें खिला लेता।' उसने हल्की-सी मुस्कान बिखेर कर कहा,—'क्या बताऊँ दूसरों के भोजन की चिन्ता करके स्वयं खाने की मेरी अभी आदत नहीं पड़ी।,

'आदत के दिनों में भी तो पहले तुम्हीं को खाना होगा।' नीरजा ने अपनी दृष्टि नरेन्द्र पर गड़ा दी। नरेन्द्र सिहर उठा। उसने बात बदली—'क्या तुमने कोई भी पत्र अपनी सकुशलता का अपने घर नहीं डाला ?'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'मैं जानबूझ कर अपनी शान्ति-भंग होने देना नहीं चाहती।'

'किन्तु तुम्हारी माँ की क्या दशा होगी और तुम्हारे पड़ोसियों में क्या-क्या अफवाहें उड़ी होंगी, कभी इस पर भी सोचा ?'

'सोचा, प्रायः सोचा। तुम्हें नहीं पता मैं अन्दर-ही-अन्दर कितना रोई, किन्तु मुझे मेरी समस्या का कोई हल नहीं दिखाई दिया। प्रत्येक क्षण मेरे सामने मर्यादा का प्रश्न आकर खड़ा हो गया।'

'तो इस समस्या को अब मैं हल करूँगा।'

'कैसे ?'

'तुम खाना खा लो, तो बताऊँ।'

'मैं खाना खा चुकी हूँ।'

'मुझसे झूठ बोलोगी तो फिर मैं इतना झूठ बोलूँगा कि तुम उसके समुद्र में डूब जाओगी।'

'नरेन्द्र !'

'नरेन्द्र नहीं, बस पहला काम यह कि तुम खाना खा लो !'

नीरजा ने तुरन्त अपनी थाली सजायी और खाना शुरू कर दिया।

'मैं सोचता हूँ तुम्हारे माता-पिता अब बहुत परेशान हो चुके हैं, अतः मैं कल ही यहाँ से चला जाऊँ और तुम्हारे बारे में उन्हें सूचना दे दूँ।'

'किन्तु यह काम तो एक पत्र से भी हो सकता है।'

पत्र से नहीं हो सकता पत्र के अर्थ परोक्ष में यही लिये जायेंगे कि तुम्हें

नरेन्द्र ही बहका कर मंसूरी लाया है और अब वह तुम पर सम्पूर्ण अधिकार जमा चुकने के बाद रहस्योद्घाटन कर रहा है।'

'किन्तु यदि तुम स्वयं से जाकर सूचना दोगे तो भी तुम्हारे ऊपर शंका की जा सकती है और फिर मेरे पिताजी ने जो कसम खा रखी है कि वे मुझे उसी एम० बी० बी० एस० डाक्टर को सौंपेंगे, वह समस्या तो बनी ही रह जायगी।'

'मेरे विचार से स्थिति बहुत बदल चुकी होगी, क्योंकि एक वर्ष का समय बहुत होता है। तुम्हारे पिता जी तो सम्भवतः तुम्हारे जीवन से सशंकित हो चुके होंगे। यदि मैं तुम्हारे यहाँ जाकर पहले यह न कहूँ कि तुम यहाँ बैठी हो और मात्र एक मित्र के नाते तुम्हारे विषय में पूँछू तो अपने-आप ही कोई-न-कोई बात तुम्हारे पिताजी मुझसे अवश्य बतायेंगे और मैं स्थिति समझ लूँगा।'

'स्थिति तो मैं समझ चुकी हूँ।'

'नहीं, दूर-ही-दूर से ठीक बात का पता नहीं लगता। मैं कल ही जाऊँगा।'

'इतनी जल्दी क्या है? मंसूरी आये हो तो जरा घूम तो लो। तुम्हें मेरा कल्याण ही करना है तो सप्ताह भर बाद ही कर देना। कल तुम्हें माउसी फाल दिखाने ले चलूँगी और फिर।'

'और फिर....?'

'कुछ नहीं मैं कह रही थी, यहाँ से कुछ दूर पर चकराता है। बहुत बढ़िया स्थान, वहाँ यदि १५ दिन रहा जाय तो जीवन एक संगीत बनकर झंकार उठे। कहते हैं, वहाँ जो जाता है, कवि हो जाता है।'

'वाह! तब तो चकराता देखना चाहिए।'

'जरूर, दो-चार दिन मंसूरी घूम लो फिर चकराता चला जाय।'

नरेन्द्र चकराता की बात के चक्कर में ऐसा पड़ा कि नीरजा के साथ मंसूरी की रम्य पहाड़ियों पर सब कुछ भूल गया। चार दिन बीत गये और पाँचवें दिन जब चकराता चलने की तैयारी की जा रही थी तो नीरजा को एक पत्र उसके स्कूल के एक चपरासी ने लाकर दिया। नीरजा ने पत्र को थोड़ा-सा पढ़ने के बाद नरेन्द्र से कहा—लो सुनो, यह पत्र तुम्हारे पिता राजेन्द्रनाथ बाबू का आया है :—

सुश्री नीरजा जी,

मस्तिष्क में अत्यधिक जोर देने के पश्चात् आपका नाम ध्यान में आ सका। आपने अपनी नियुक्ति से सम्बन्धित जो धन्यवाद का पत्र दिया था सम्हाल कर नहीं रख सका। आशा करता हूँ आप सानन्द होंगी। पत्र लिखने का कारण मेरी विवशता ही है। लगभग ७ दिन पूर्व प्रिय नरेन्द्र, जो आपका सहपाठी था, मंसूरी घूमने गया था। उससे कहा था कि वह वहाँ पहुँचते ही अपनी कुशलता से हमें अवगत करायेगा किन्तु उसका कोई भी पत्र नहीं आया। उसका पता न मिलने से मैं यह नहीं समझ पाया कि उसके सम्बन्ध में कसे पाऊं? अचानक आपका ध्यान आया यह सोचकर

कि मंसूरी कोई बहुत बड़ी जगह नहीं है, मैं आपको यह पत्र आपके स्कूल के पते से भेज रहा हूँ। आप कृपया उसका पता यदि लगा सकें तो मुझे सूचित करें। आज के समाचार पत्र में एक घटना पढ़ने को मिली कि मंसूरी से देहरादून की ओर आती हुई एक बस किसी खड्ड में गिर गयी और उसके २६ व्यक्ति आहत हुये। तबियत बेचैन हो उठी और प्रिय नरेन्द्र की कुशलता से अवगत होने के लिये मुझे यह पत्र आपको लिखना पड़ा। आशा है आप कष्ट के लिये मुझे क्षमा करेंगी।

आपका
राजेन्द्र नाथ

नीरजा ने पत्र समाप्त करते ही नरेन्द्र से पूछा कि उसने अपने घर अपनी कुशलता का पत्र क्यों नहीं डाला? नरेन्द्र बोला—'पत्र तो वह डाल देता किन्तु उसका यह निश्चय ही नहीं हो पाया कि वह रहेगा कहाँ?'

'क्यों? मेरी कुटिया के अतिरिक्त और कहाँ रहना उचित था।'

नरेन्द्र इस बात का कोई उत्तर न देकर केवल मुस्करा दिया और फिर पहलू बदलकर बोला, 'चार दिन में पिता जी की यह हालत हो गई। जिसने अपने जीवन में अपनी पत्नी तक को पत्र लिखने में संकोच किया, वह एक अर्द्ध-परिचित युवती को भी निःसंकोच पत्र लिखने में नहीं झिझका। पिता की ममता तुमने देखी....?'

नीरजा नरेन्द्र का मुख देखती हुई हतबुद्धि हो गयी। नरेन्द्र आगे बोला—'और तुम्हें तो सालभर होने को हुआ। तुम तो अनिश्चित दिशा की ओर अपने घर से निकली थी, तुम्हारे पिता की क्या दशा होगी?'

नीरजा के नेत्र छलछला आये। वह बोली—'नरेन्द्र मुझे तुम अब कानपुर ले चलो। मै अपने पिता जी के पास जाना चाहती हूँ।'

'किन्तु तुम्हारी मर्यादा का प्रश्न? तुम्हारा वह एम० बी० बी० एस० डाक्टर?'

'हाँ वह एम० बी० बी० एस० डाक्टर, जिसे आज तक दूसरा घर ही नहीं मिला।' नीरजा अपने मुँह पर हाथ रखकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई। नरेन्द्र अपनी प्रश्नभरी दृष्टि नीरजा पर गड़ाये रहा और नीरजा फिर बोली—'प्रश्न यदि मात्र मेरे जीवन तक ही सीमित होता तो मैं किसी भी अनर्थ को सहन कर जाती किन्तु मेरी स्थिति उस महिला-कल्याण-समाज की सदस्या के नाते दूसरी है। यह सम्पूर्ण नारी जाति की मर्यादा का प्रश्न है।'

नरेन्द्र ने कुछ देर अपनी बुद्धि दौड़ाई और फिर चुटकी बजाकर बोला—'मैं आज एक पत्र अपने पिता जी के पास लिखता हूँ। इस पत्र में वे सभी समस्यायें लिख भेजूँगा, जिनके कारण तुम यहाँ परदेश में पड़ी हो और वे अवश्य तुम्हारे पिता से मिलकर उन्हें समझा लेंगे

'किन्तु मैंने बाबू जी को यह तो बताया ही नही था कि मैं डा० प्यारे लाल

की लड़की हूँ। मैने तो अपना नाम और तुम्हारे पूर्व परिचय के अतिरिक्त उन्हें सब झूठ बताया था।'

'क्यों ?'

'क्योंकि मुझे भय था कि बाबूजी डा० प्यारे लाल का नाम सुनकर उनसे मेरी इस नियुक्ति की आवश्यकता के सम्बन्ध में कुछ पत्र-व्यवहार न करें।'

'समझ गया, अब मैं अपने पत्र में इसे भी स्पष्ट कर दूँगा।'

'नरेन्द्र तुम्हारे इस उपकार के प्रति मैं जीवन भर आभारी रहूँगी।'

'इसमें आभार की क्या बात है ? अजीब हो तुम।'

नीरजा कृत्य-कृत्य होकर नरेन्द्र को देखती रह गयी। चकराता जाने का कार्य-क्रम स्थगित हो गया। नरेन्द्र ने अपने पिता को पत्र लिख दिया और अब वह अधिक उन्मुक्त होकर नीरजा के साथ मंसूरी घूमता रहा। वे दोनों ही बाबू राजेन्द्रनाथ की प्रतीक्षा में रहे। चार दिन और बीते पाँचवें दिन डा० प्यारे लाल अपनी पत्नी सहित मंसूरी पहुँच गये। नीरजा के काटिज में पहुँचे तो वहाँ चौकीदार ने बताया कि नीरजा नरेन्द्र के साथ 'हाइकमेन्स' होटल में एक विशेष कार्य-क्रम में गयी हुई हैं। डा० प्यारे लाल के लिये मंसूरी कोई नयी जगह न थी। वे जानते थे कि 'हाइकमेन्स' होटल कितना महत्वपूर्ण होटल उस रम्य नगरी में है। वे अपना सामान नीरजा की काटिज मे छोड़कर सपत्नीक होटल में पहुँच गये। अन्य दर्शकों की भाँति वे भी एक स्थान पर बैठ गये। उनकी दृष्टि ने नीरजा को ढूँढ़ लिया और जब कार्य-क्रम समाप्त हुआ तो माता और पिता ने तेजी से बढ़कर अपनी पुत्री को आगे से घेर लिया। नीरजा अचानक अपने पिता को सामने देखकर घबड़ा गयी, किन्तु इसी क्षण माता ने उसे अपनी छाती से चिपका लिया और स्नेह के आँसू बह चले। नरेन्द्र को यह समझने में देर न लगी कि वे नीरजा की माता हैं और यह पिता। उसने उन्हें प्रणाम कर अपने बाबू जी के विषय में पूछा। प्यारे लाल जी ने अपनी जेब से एक पत्र निकाल कर उसे दे दिया। वे चारों व्यक्ति नीरजा की काटिज में आये और वहाँ एक दूसरा ही वातावरण उपस्थित हो गया।

नीरजा अपने बहते हुये आँसुओं को अपने आँचल से बार-बार पोंछती रही। नरेन्द्र ने अपने पिता का पत्र पढ़ा। प्यारे लाल ने प्रश्नभरी दृष्टि से नरेन्द्र को देखा और नरेन्द्र ने उनसे प्रश्न किया—'तो क्या सचमुच उस एम० बी० बी० एस० डाक्टर के बाप ने दो हजार लौटाने से इन्कार कर दिया ?'

'वह तो कहता है कि वह शादी करने को आज भी तैयार है।'

'लेकिन आप क्या कहते हैं ?' नरेन्द्र ने जरा गम्भीर मुद्रा में प्रश्न किया।

'बाबू राजेन्द्रनाथ जैसे व्यक्ति से मिलने के बाद भी क्या यह मेरे लिए सम्भव था कि मैं उस झूठे अहम् में डूबा पड़ा रहता आपने अपने पिता के पत्र से तो सभी स्थिति जान ली होगी मैं चाहता हूँ हम लोग कल ही यहाँ से प्रस्थान कर दें

नरेन्द्र मुस्कराया। नीरजा ने एक बार दृष्टि भरकर नरेन्द्र को देखा और आँचल से अपना मुँह ढाँकती हुई वह दूसरे कमरे में चली गई। प्यारे लाल जी ने अपनी पत्नी की ओर देखा और पत्नी अपने स्नेह से भरे आँसुओं को आँखों में लिये-लिये ही मुस्करा पड़ी।

रात बीती। दूसरे दिन पहली बस से वे सब मंसूरी से चल दिये। देहरादून एक्सप्रेस लखनऊ स्टेशन पर रुकी और नरेन्द्र वहीं उतर गया। कानपुर जाने के लिये प्यारे लाल जी को भी गाड़ी बदलनी पड़ी।

कुछ महीने बाद ही नरेन्द्र का विवाह नीरजा से सम्पन्न हुआ और इस विवाह के अवसर पर उस एम० बी० बी० एस० के समाज-सेवी पिता का भाषण ऐसा आदर्शात्मक हुआ जैसे उनसे बड़ा समाज का शुभ चिन्तक कोई अन्य नहीं है। ☐

टुकड़े, ज़िन्दगी के

एक

—मैं देख रहा हूँ आज तुम फिर मुंह फुला कर बैठी हो।

—............

—कुछ बोलती क्यों नहीं ?

—क्या बोलूं, आप तो दिन-भर के लिये अपनी दूकान पर चले जाते है और मैं दिन भर ताने सुनती रहती हूँ।

—दिन भर ताने !

—हाँ, अगर दिन में चार बार बात-पीछे यह कहा जाता रहे कि तुम्हारे बाप ने यह नहीं किया और तुम्हारी माँ ने वह नहीं दिया तो दिन भर नहीं कहा जायगा, तो और क्या कहा....

—उँह, तुमको कितनी बार समझाया, उनकी बात हँस कर टाल दिया करो।

—हँस कर टालने का प्रयास ही तो है कि मैंने अभी तक माँ जी को कोई जवाब नही दिया, भले ही घुटती रहूँ। आप बार-बार मुझे ही समझाते हैं माँ जी को नहीं।

—बड़ों के मुँह लगना मुझे नहीं आता, वो मेरी माँ हैं। मैं उन्हें दीक्षा नहीं दे सकता।

—माँ को समझाना, दीक्षा देना है तो फिर इसके माने मैं इसी तरह से कुढ़ती रहूँ।

वह उसकी इस बात का कोई उत्तर दिए बिना घर से बाहर निकलने लगा।

—कहाँ चल दिये आप ?

—कहीं नहीं, अभी थोड़ी देर में आता हूँ। अपना मूड ठीक कर लो।

× × ×

दो

इस प्रकार की तुनुक-फुनुक के साथ ग्यारह महीने बीते और घर में एक बच्ची ने जन्म लिया।

अरी हरीश की माँ बधाई दादी बनने की बधाई मिठाई खिलाइये

—आइये, आइये। आपका घर है। हम तो मोहल्ले भर में मिठाई बाँट देते लेकिन.........

—लेकिन ? ओऽऽ बिटिया है।

—हाँ ऽऽऽ, लेकिन हमको तो पता था, शुरू से ही बहू के ऐसे लच्छन थे कि बिटिया छोड़ बेटा हो ही नहीं सकता था।

—क्यों ?

—अरे मायके की परछाई बहुत दूर तक चलती है, अब तुम्हीं देख लो बहू के मायके में बिटिया ही बिटिया हैं। बहू खुद तीन बहन, बहू के चाचा के दो लड़कियाँ, ताऊ हैं तो उनकी भी पहलौठी दो लड़कियाँ, अगर मेरी चलती तो मैं तो इस घर में हरीश की शादी ही होने नहीं देती।

—तो क्या बहू के भाई नहीं हैं।

—दो भाई हैं एक बहू से बड़ा है और एक सब भाई बहनों में छोटा, लेकिन जमीन का असर बहुत दूर तक बीज पर पड़ता है। बिटियों की राशि वाले घर में सम्बन्ध करने से बिटिया ही तो मिलेगी।

—क्यों दिल छोटा करती हो ? अरे बिटिया हुई है तो बेटा भी होगा।

—वह तो होगा ही। हम बेटा-बेटी में कोई फर्क नहीं करते। देखो ना, आज बरही है और हमने आज खास-खास लोगों की दावत कर दी। आपकी हमारी कोई रिश्तेदारी तो नहीं, लेकिन हमने तो आपको बुलाया, चन्नों के यहाँ और बन्नों के घर भी कहला दिया है। अब आप यूँ समझ लो कि अपने घर के ही कितने लोग हैं।

× × ×

तीन

हरीश कमरे में आया तो शालिनी अपनी बच्ची को पेट में चिपकाए आँख बन्द कर पड़ी थी।

—अजी सो गईं क्या ?

—.............

—आज अभी से सो गईं। अभी रात के आठ भी नहीं बजे।

शालिनी ने आँख खोली। किन्तु कुछ बोली नहीं।

—आज फिर कुछ माँ जी ने कहा, क्या ?

—कब नहीं कहतीं ? बरहीं के दिन मेरे बाबू जी जो कुछ लेकर आए, उन्हें कुछ भी नहीं जँचा। तुनुक-फुनुक करती ही रहीं। बाबू जी के कानों में उनकी नाराजगी टपक गई, किन्तु वे चुपचाप केवल एक लड्डू मुँह में डाल कर चले गए।....तब से महीना बीत गया मैंने आप से कुछ नहीं कहा, लेकिन उन्हें संतोष तो है ही नहीं। वे अपना गुस्सा दिखाने का बहाना ढूँढ़ती रहती हैं। वह कोने में पड़ा झुनझुना देखिये। कितना बढ़िया था। पन्द्रह रुपए से कम का नहीं होगा मा जी ने आज इसे पटक

कर तोड़ दिया। बोलीं चाँदी के झुन्झुने का शगुन होता है। थाली, कपड़े, मेवा और मिठाई सब जोड़ लीजिये कितने का हो गया। एक झुन्झुना यदि प्लास्टिक का दे दिया गया तो....।

—आखिर बात क्या शुरू हुई ? माँ जी पागल तो नहीं हैं जो यूँ ही झुन्झुना उठा कर पटक देंगी।

—आपको अपनी माँ की कभी कोई गलती दिखाई नहीं देगी। गल्ती तो मेरी है। मैंने बिटिया क्यों पैदा की। बात पीछे यही कहती हैं—मेरी चलती तो ये बहू इस घर मे आ ही नहीं सकती थी।

—तो इसमें क्या गलत है ? तुम्हें मालूम है मैंने अपनी माँ की मर्जी के खिलाफ़ तुम से शादी की थी। अब तुम्हारा यह फर्ज है तुम उनसे निभा कर चलो।

—ताली दोनों हाथ से बजती है। मैंने बहुत निभाने की कोशिश की !

—मैंने घर में आते ही सुन लिया है कि आज तुमने उन्हें बहुत कस के जवाब दिया है।

—हाँ, दिया है।

—तुम्हें इस घर में रहना है या नही ?

—ऐसी हालत में बिल्कुल नहीं।

—ठीक है, कल तुम अपने मायके चली जाओ।

—............

—............

× × ×

चार

दो महीने बाद हरीश अपनी ससुराल शालिनी से मिलने पहुँचा।

—मैंने तुम्हें दो पत्र लिखे थे। तुमने उनका उत्तर क्यों नही दिया ?

—क्या उत्तर देती। जब आपको मेरी जरूरत ही नहीं, तो फिर उत्तर दिया या न दिया उसकी सार्थकता ही कहाँ रह जाती है।

—कौन कहता है मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं ! किन्तु मैं तुम्हारे पीछे माँ जी से कैसे लड़ूँ यह मेरी समझ में नहीं आता।

—यदि यह समझ में नहीं आता तो फिर जाइये अपनी माँ के आँचल में ही रहिये।

—मैं ऐसा रूखा उत्तर पाने को नहीं आया हूँ। तुम्हें हमारे साथ चलना होगा।

—मुझे नहीं जाना है।

—क्या तुम्हारी जिन्दगी यहाँ कट जायगी ?

—जब तक कटेगी तब तक ही सही। मैं स्वयं कोई काम करूँगी। मैं पढ़ी-लिखी हूँ बड़ी न सही, छोटी-मोटी नौकरी तो पा ही सकती हूँ

—शालिनी ! मैं झगड़े को बढ़ाना नहीं चाहता । मैंने तुम्हें मात्र एक नजर में पसन्द किया था और अपनी जिद से शादी की थी, इसलिये तुम्हें मनाने आ गया हूँ ।

—आप मेरे ऊपर अब एहसान करना छोड़ दीजिये ।

—शालिनी तुम इतनी कठोर हो ! !

—मैं कठोर नहीं, किन्तु मेरा भी कोई व्यक्तित्व है ।

शालिनी की यह बात सुन कर हरीश कुछ देर सोचता रहा । इसमें संदेह नहीं माँ जी की जबान कुछ कड़वी है, किन्तु उनको इस आयु में अब मोड़ना कठिन है । कुछ न कुछ तो उनको भी दबाना पड़ेगा, लेकिन शालिनी के हौसले भी मुझे नहीं बढ़ने देना है ।

उसने पैंतरा बदल कहा—मैं माँ जी को तुम्हारी अनुपस्थिति में बहुत कुछ कह चुका हूँ । मुझे आशा है वे अब ऐसा कोई व्यवहार नहीं करेंगी जिससे तुम्हें कोई कष्ट हो । और फिर मैं तो हूँ । हरीश ने शालिनी की आँखों में आँखें भर कर कहा—पिछली सब बातें समाप्त, तुम अब राजी हो तो तुम्हारे बाबू जी से औपचारिक अनुमति ले लूँ ।

—अच्छा ले लो ।

× × ×

पाँच

शालिनी फिर ससुराल आ गई । माँ जी की आदत तो आदत थी । आदत बिना भय बदली नहीं जाती । हरीश की माँ को अपने घर में किसका भय ! हरीश के बाबू जी को अपने व्यापार में ही फुर्सत नहीं थी । बेटे के विवाह में दहेज पाने की हसरत उन्हें भी थी, किन्तु जिन परिस्थितियों में वह विवाह हुआ था वे चुप्पी लगा गए थे । अब यह हाय हाय करने का काम मात्र हरीश की माँ के जिम्मे रह गया था कि बेटे की शादी उनकी मर्जी से होती, उसकी ससुराल की मोटर दरवाजे पर खड़ी होती ।

घर की बातों को लेकर हरीश और शालिनी में भी जब-तब कुछ ठनती ही रहती, फिर भी दुबारा ससुराल आने के दो साल बाद शालिनी को बेटा हुआ । घर मे फूल की थाली बज उठी । बरहीं के दिन लम्बी दावत हुई । डिस्को डान्स के कैसट बजे, किन्तु माँ जी की तुनुक-फुनुक अन्ततः उस दिन भी सुनाई दे गई ।....अरे नलिनी के होने में कुछ नहीं किया तो नाती के नाना बनने में तो कुछ किया ही जा सकता था । अब तो बेटा भी कमाता है । चाँदी की इत्ती-सी तश्तरी और दो साड़ियों के लाने का मतलब क्या है ? दोनों साड़ियाँ तो हमें अपनी लड़कियों को ही देनी पड़ जायेंगी । मेरे लिये क्या है ? बच्चे के मामा की अच्छी नौकरी लगी है । शगुन के लिये और हमारे घर की शान रखने के लिये क्या कोई सोने की चीज नहीं भेजनी चाहिये थी ? अरे हमने तो कभी कुछ माँगा ही नहीं । न स्कूटर न टी० वी० ।

उनकी आदत बड़बड़ाने की थी । वे बड़बड़ाईं । लोगों ने सुना और बात आई गई हो गई, किन्तु शालिनी इस बड़-बड़ाहट को भुला न सकी ।

अपने नवजात शिशु के साथ जब मसवारे का नहान पूरा कर वह फिर पति से अपने कमरे के एकान्त में मिली तो उसने कहा—उस दिन माँ जी ने मेरे भाई के आने पर जो कुछ कहा था, क्या आपने सुना था ?

—सुना क्यों नहीं था ?

—तो, फिर आप मौन क्यों रहे ?

—तो क्या मैं अपनी माँ को डाँटने लगता ?

—तुम्हारी माँ, माँ हैं, हमारे भाई भाई नहीं ।

—मतलब !

—मतलब साफ़ है । क्या उन्होंने मेरे भाई का अपमान नहीं किया !

—कोई अपमान नहीं । उनसे उन्होंने कुछ नहीं कहा, अपने आप बड़बड़ाने पर कोई अंकुश नहीं लगाया जा सकता ।

—लेकिन उसके बाद भी तो जाने क्या-क्या बका करती हैं । हरीरा तो मेवे का बनायेंगी किन्तु बातें ज़हर की तरह कहेंगी ।

—मेरे पास इसका कोई इलाज नहीं है ।

—तो मैं उनकी यूँ ही उल्टी-सीधी बराबर सुनती रहूँ ?

—सुनो या मत सुनो, मगर माँ जी को जवाब मत देना ।

× × ×

छः

—मुझे एक नौकरी मिल रही है, कर लूँ ?

—कितने रुपये की ?

—छः सौ रुपये की, कैंब्रिज नर्सरी स्कूल में ।

—क्या कीमत है छः सौ रुपये की ! हमारे घर में औरतें नौकरी नहीं करतीं । तुम्हें किस चीज़ की कमी है ?

—कमी की बात नहीं । एहसान की बात है । इस घर में रहते हुए मेरे साथ जो भी होता है वह इसलिये नहीं होता कि मैं उसकी अधिकारिणी हूँ, बल्कि मुझ पर एहसान किया जाता है । मैं एहसानों से दबी चली जा रही हूँ और फिर....।

—और फिर क्या ?

—यही कि दिन भर यहाँ जो बड़-बड़ सुनती रहती हूँ उससे तो कुछ मुक्ति मिलेगी ।

—और यह बच्चा कैसे रहेगा ।

—माँ जी, बच्चे की दादी क्या इसे नहीं रख सकतीं ?

उनसे कोई आशा मत करो ।

—तो मैं कोई आया रख लूँगी, केवल पाँच घण्टे रोज की बात है। सौ रुपये अगर घर की कहारिन को बढ़ा दूँगी तो वह हँस कर यह काम हाथ में ले लेगी।

—लेकिन मुझे पसंद नहीं। मुझे भय है तुम्हारी नौकरी से मेरे अपने आराम में व्यवधान पड़ेगा।

—कोई व्यवधान नहीं। मैं यह मौका हाथ से नहीं जाने देना चाहती। मैं अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती हूँ।

—दो बच्चों की माँ बनने के बाद!

—हाँ, मैं दो बच्चों की माँ हूँ इसलिये और अपने पैर मजबूत करना चाहती हूँ। आपने कभी मेरे दर्द को समझने की कोशिश नहीं की। हमेशा अपनी माँ के सुर में सुर मिलाते हैं। आपको भी हमेशा यह मलाल रहा है कि आप को ससुराल से स्कूटर क्यों नहीं मिली। आप की और माँ जी की बात मैंने सुनी है।

—सुनी होगी, मुझे तुमसे कोई डर नहीं। स्कूटर मिली होती तो मैंने दौड़-धूप कर अपनी दूकान का काम इतना बढ़ा लिया होता कि तुम छः सौ की नौकरी पकड़ने की बात न करतीं। श्याम लाल गुप्ता की दूकान मेरे बगल में ही है। पिछली साल उसको उसकी शादी में क्या नहीं मिला स्कूटर, टी० वी०, टू-इन-वन और नगदी भी। तुमने उसकी दूकान देखी, कितना काम उसने बढ़ाया है।

—तो आप भी अब दूसरी शादी कर लीजिये।

—कर ही लूँगा। क्या तुम समझती हो मेरी अब शादी नहीं हो सकती!

—ठीक है, आप के मन में ऐसे भाव हैं तो अब आप दूसरी शादी कीजिये। मैंतो अब इस हाथ आती नौकरी को और भी जाने नहीं दूँगी।

—मेरे घर से नौकरी करने मत निकलना। अपने मायके में जाकर चाहे जो करो।

—मैं आपकी और माँ जी की चाल समझ रही हूँ। सचमुच मुझे यह घर छोड़ना ही पड़ेगा। आप लोगों की दहेज पाने की लालच अभी गयी नहीं है।

—हाँ, नहीं गई है शायद।

× × ×

सात

शालिनी मायके चली गई। उसने नौकरी करनी भी शुरू कर दी।

जिन तनावपूर्ण क्षणों से गुजर कर दोनों एक दूसरे से अलग रहने लगे थे, हरीश शालिनी को नीचा दिखाने के लिये स्वयं से उससे मिलने नहीं गया। महीना, दो महीना बीता तो एक बार उसके मन में आया कि वह शालिनी से पूछे कि उसकी अकड़ कम हुई अथवा नहीं। वह मन की बात मन में ही दबा गया और धीरे-धीरे आठ महीने बीत गए। कोई भी एक दूसरे से नहीं मिला शालिनी ने अपनी माँ को ससुराल की हालत जो बताई थी उससे उसकी माँ को यह भय हो गया था कि यदि शालिनी को

बाध्य कर ससुराल भेजा जायगा तो अवश्य ही कोई ऐसी अवांछित घटना हो सकती है जैसी प्रायः अखबारों में दहेज काण्ड के नाम पर निकलती रहती है। उसने शालिनी को पूर्ण संरक्षण दिया। उसके बच्चों को कलेजे से लगा कर पालना शुरू किया और शालिनी नौकरी करती रही। अब साल भर से अधिक समय हो गया। स्कूल में शालिनी की लगन और मेहनत के कारण उसे विशेष उन्नति प्रदान की गई। उसे ग्रेड मिल गया। वेतन में तरक्की हो गई।

हरीश अपनी ही अकड़ में रहा।

× × ×

आठ

धीरे-धीरे करके तीन साल बीत गए। माँ जी के जोर लगाने पर हरीश के पिता ने हरीश को एक अच्छी राशि दूकान के काम को बढ़ाने के लिये दी। दूकान की हैसियत और शो में चार चाँद लग गए।

शहर से बाहर, जाति-बिरादरी के जिन लोगों को हरीश के घर की मानसिकता पता नहीं थी, उनमें से एक दो लोगों ने अपनी बेटियों के विवाह की संभावना की टोह ली। पिता से बात करने पर ऐसा लगा कि विवाह हो सकता है। पहली शादी की बात बीच में आई तो कहा गया—उस औरत से तो कभी का सम्बन्ध विच्छेद हो गया है। मात्र औपचारिकता के लिये तलाक लेना है।

× × ×

नौ

हरीश ने दूसरे विवाह की सम्भावना को दृष्टि में आते ही, वकील से राय ली और एक तलाक नामा बाकायदे शालिनी के पास भेज दिया गया—

चूँकि लगभग चार वर्ष से आप नितान्त अपनी मर्जी से मेरे अभियोगार्थी (क्लाइंट) श्री हरीश जी की पत्नी होने के उपरान्त भी अपने दायित्वों को न निभाते हुये अपने पति को उनके अधिकारों से वंचित रख रही हैं और समय-समय पर उनके द्वारा किये गये प्रयासों की उपेक्षा करती रही हैं, अतः स्पष्ट है कि आप परोक्ष में तलाक लेना चाहती हैं। यदि आप ने इस नोटिस को प्राप्त करने के एक महीने के अन्दर कोई उत्तर नहीं दिया, अथवा आप स्वयं अपने पति के पास अपने व्यवहार के लिये लिखित खेद प्रकट करती हुई नहीं आ गईं तो यह माना जायगा कि आप तलाक चाहती है और चूँकि यह तलाक आप के चाहने के कारण अस्तित्व में आयेगा अतः कानूनी रूप से आप पति घर से किसी भी प्रकार की कोई भी सुविधा अथवा अधिकार पाने की अधिकारिणी नहीं होंगी।

शालिनी को यह नोटिस मिली तो उसने अपने घर के लोगों से परामर्श लिया। शालिनी के भाई ने राय दी—बच्चों के पालने का हरजाना उनसे बँधवाया जाय, किन्तु शालिनी को भय हुआ कि इस झगड़े में कहीं उसके बच्चे उसके पास से हटा कर हरीश

को न सौंप दिये जायें। उसके जीवन का सहारा मात्र यही दो बच्चे थे। वह इनको किसी भी कीमत पर अपने से पृथक होने देना नहीं चाहती थी। वह इस नोटिस पर एकदम चुप्पी साध गई। उसे सबसे बड़ा संतोष इसी में था कि वकील की नोटिस में कहीं भी बच्चों का कोई जिक्र नही था।

× × ×

दस

चार-छः महीने बीते तो शालिनी को पता लगा—हरीश की दूसरी शादी तय हो गई है। इस जानकारी के प्राप्त होने पर भी वह कुछ नहीं सक्रिय हुई। वह मात्र अपनी नौकरी और बच्चों को पालने में अपने को केन्द्रित रख कर एक सुकून भरी जिन्दगी काट देना चाहती थी।

× × ×

ग्यारह

हरीश की दूसरी शादी हो गई। शालिनी के भाई ने पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि हरीश को माँ जी और पिता ने लड़की वालों से यह छुपा लिया कि हरीश द्वारा तलाक दी गयी पत्नी के कोई संतान भी है। दहेज मे उसे वह सब कुछ मिल गया था जिसकी आकांक्षा आज के युग में प्रायः की जाती है, किन्तु पत्नी थी मात्र आठवीं पास और आकृति में भी बहुत सामान्य। दूसरे विवाह का मामला था। हरीश को औरत की जगह औरत और आकर्षक दहेज मिल रहा था, शादी शान के साथ हुई।

× × ×

बारह

समय बीतता रहा। शालिनी के बच्चे स्कूल जाने लायक हुये। स्कूल जाने लगे। टीचर हो जाने के नाते वह अपने बच्चों को बहुत ही मेहनत और धैर्य से पढ़ाती थी। बच्चों की लगन पढ़ाई की ओर जाग्रत हो गई और वे अपनी कक्षाओं में उच्च से उच्च-तम स्थान पाने लगे। शालिनी के लिये यह सबसे अधिक संतोष की बात थी।

× × ×

तेरह

इधर हरीश को अपनी नयी पत्नी से चार साल में एक भी संतान प्राप्त नहीं हुई। हरीश की माँ को इसका एक विशेष दुःख रहने लगा। नई बहू की डाक्टरी जाँच और इलाज से यह साबित हो गया कि उससे संतान की संभावना नही।

अब हरीश ने अपनी पहली पत्नी शालिनी की तथा उसके बच्चों की खोज-खबर लेनी शुरू की। वह एक बार हिम्मत कर के शालिनी से मिलने उसके स्कूल पहुँचा, किन्तु शालिनी ने बात ही बात में जब यह जान लिया कि हरीश की दूसरी पत्नी बाँझ है तो वह कुछ अधिक रूखी हो गई और बोली—गरल के घूँट पी-पी कर मैंने अपने दिन काटे हैं, आप भी तो जानिये कि ये गरल के घूंट होते क्या हैं

हरीश विवश होकर चुपचाप उसके पास से लौट आया।

× × ×

चौदह

कुछ दिनों बाद शालिनी को पता चला कि हरीश अपनी दूसरी पत्नी के भाई के किसी छोटे बच्चे को घर ले आया है और शायद आगे चल कर उसे गोद लेने की सम्भावना हो जायगी।

यह नई बात सामने आते ही शालिनी ने हरीश की नई ससुराल पर अपने भाई को भेजा और उसके भाई ने अपनी बहन के बच्चों के फोटो उनके हवाले करते हुये उन्हें बताया कि ये हरीश के बच्चे हैं जिन्हें आपसे छुपाया गया था। उसने अपनी बहन की शादी के फोटो और एक वह फोटो भी उन्हें दिया जिसमें हरीश अपनी गोद में अपनी दो साल की बच्ची को लेकर शालिनी के साथ बैठा हुआ था। हरीश की ससुराल वालों को जब यह सब मालूम हुआ तो उन्हें बहुत बड़ा धक्का लगा। उन्होंने पूछा—आप लोगों ने उन्हें पहिले क्यों नहीं बताया ? तो उन्हें बताया गया कि उन्हें इस शादी के बारे में कोई सूचना नहीं थी।

अब हरीश के घर एक नया तूफ़ान आ गया। उसके साले अपने बच्चे को अपने घर ले गये। पहली पत्नी से सन्तान होने की बात जो छुपाई गई थी उसके कारण हरीश की पत्नी बुरी तरह से अपने पति से लड़ गई। आदत के अनुसार हरीश ने उसे भी क्रोध में खरी-खोटी सुना दी और वह अपने मायके चली गई। उसका मायका काफी सम्पन्न था, पति की बेईमानी के कारण वह बहुत क्षुब्ध हुई थी अतः उसे अपने मायके में संरक्षण दिया गया।

× × ×

पन्द्रह

दिन बीतते गए। हरीश की माँ अपने ग़म और बुढ़ापे से हार कर दिवंगत हो गईं। हरीश के पिता अपनी पत्नी के मरते ही बहुत उदास-उदास से रहने लगे और दस-ग्यारह महीने भी बीतने नहीं पाये थे कि वे भी इस लोक को छोड़ गए।

हरीश ने बहुत अकेलापन अनुभव किया। वह फिर शालिनी के पास गया। उसने अपने व्यवहार के लिये खेद प्रकट किया, क्षमा माँगी किन्तु शालिनी टस-से-मस न हुई। हरीश अब अपनी दूसरी पत्नी के घर गया और उसे किसी प्रकार मनाकर घर ले आया।

× × ×

सोलह

हरीश की दूकान का काम दिन पर दिन बढ़ रहा था, किन्तु उसका हाथ बटाने वाला कोई नहीं था। पिता से उसे बहुत सहारा मिला था किन्तु माँ जी के मरते ही पिता भी इतनी जल्दी इस संसार से चले जायेंगे वह सोच भी नहीं सकता

था। घर के जमे जमाये व्यवसाय का भविष्य उत्तराधिकारी के अभाव में दिखाई नहीं दे रहा था। दिन बीतते गए।

× × ×

सत्रह

शालिनी की लड़की प्रियंका ने पन्द्रहवें पर्व को पार करते-करते हाई स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की और उसके भाई पीयूष ने तेरह वर्ष पूरा करते-करते आठवीं कक्षा विशेष योग्यता के साथ पास कर ली।

एक ही नगर में रहने के कारण हरीश शालिनी के घर की गतिविधियों पर पूर्ण नजर रखे रहता था। इस समाचार की भनक उसके कान में पड़ते ही वह बच्चों के लिये कपड़े और मिठाई लेकर पहुँचा। दिन का समय था, घर के द्वार खुले थे, अतः हरीश एक आवाज लगाते-लगाते बैठक (उसे बैठक ही कहना अधिक उचित समझा जायगा, क्योंकि अतिथि कक्ष कहने से जिस सज्जामय कक्ष का स्वरूप उभरता है वैसा वहा कुछ नहीं था) में प्रवेश कर गया। प्रियंका और पीयूष कमरे में आए और लगभग अजान से कमरे के बाहर चले गए। हरीश उन्हें आवाज ही देता रह गया। शालिनी ने प्रियंका और पीयूष के जिज्ञासा भरे क्षणों में उन्हें यह तो बता दिया था कि उनके पिता उसी शहर में कहीं दूर रहते हैं, किन्तु इस तथ्य से अवगत नहीं होने दिया था कि ये आये हुये अतिथि ही उनके पिता हैं।

बच्चे कमरे से बाहर गये और शालिनी ने बैठक के बाहर से ही देख लिया कि हरीश आया है। वह अकेले ही बैठक में आई और बहुत शुष्कता से बोली—कहिये क्या काम है ?

—कुछ नहीं बच्चों के लिये कुछ कपड़े और मिठाई....

—किसके बच्चों के लिये ?

—अपने बच्चों के लिये।

—आपके बच्चे, ये बच्चे आपके कब से हो गये ? अब तक आप कहाँ थे।

—तुमने मुझे इनके पास आने नहीं दिया।

—मैंने नहीं आने दिया कि आप के स्वार्थ ने ?

प्रियंका और पीयूष इन बातों को बैठक के बाहर से सुनते-सुनते बैठक के अन्दर आ चुके थे।

—मेरा स्वार्थ ! कैसा स्वार्थ ?

—अन्जान मत बनिये। आप ने जो तलाक भरी चिट्ठी रजिस्ट्री से भेजी थी उसे मैंने बहुत सम्हाल कर रख छोड़ा है मेरा आप का सम्बन्ध उस पत्र के साथ ही

नहीं किया ? पत्नी को अर्धांगिनी कहा गया है, क्यों ? क्या एक शरीर का रक्त केवल आधे अंग में ही प्रवाहित होता है ? जिन बच्चों पर दावा करने आप आये हैं, क्या वे भी आप को पहचानते हैं ?

हरीश अवाक्-सा खड़ा था । शालिनी की फटकार के आगे उसके पास कोई उत्तर नहीं था । वह चुपचाप बैठक से बाहर जाने लगा तो शालिनी ने शुष्क स्वर मे ही धीरे से कहा,—'आप ये कपड़े और मिठाई भी ले जाइये ।' हरीश ने एक दृष्टि शालिनी पर डाली और दूसरी बच्चों पर डालते हुये कहा,—'हम दोनों के झगड़ो के बीच बच्चों को मत लाइये । ये भेंट बच्चों को ग्रहण करने दीजिये ।'

यह बात सुनते ही पीयूष ने कहा—हमें आपकी मिठाई नहीं खाना । हमारी मम्मी हमें स्वयं सबकुछ देती हैं ।

—अब मैं भी तुम्हे सबकुछ दूँगा ।

—मुझे आप से कुछ नहीं चाहिए । मैं आपको बिल्कुल नहीं पहचानता ।

—तुम बच्चे हो, अधिक गुस्सा मत करो । धीरे-धीरे हमारा तुम्हारा प्रगाढ़ परिचय हो जायगा ।

—नहीं, मुझे आप से परिचय नहीं बढ़ाना है ।

हरीश समझ नहीं पा रहा था कि वह अब किन शब्दों से इन बच्चों को सांत्वना दे । वह कुछ देर वहाँ किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा खड़ा रहा और फिर एकदम पलट कर बैठक के बाहर निकल गया

× × ×

अट्ठारह

बैठक में कपड़े और मिठाई जैसी की तैसी रखी थी । शालिनी सोच नही पा रही थी कि वह इनका क्या करे । उसने प्रियंका से पूछा—क्या वह उन कपड़ों को लेना चाहती है ? प्रियंका ने सीधा जवाब दिया—बिल्कुल नहीं । शालिनी ने अब पीयूष से पूछा—क्या वह कपड़े या मिठाई लेना चाहता है ? किन्तु उसने भी अस्वीकार कर दिया ।

शालिनी ने एक बड़े पैकट में दोनों चीजें बाँध कर घर के एक कोने में वह पैकेट डाल दिया ।

—मम्मी जी—प्रियंका ने कहा—आपने अब तक हमें यह क्यों नही बताया था कि हमारे पिता ये ही हैं ।

—क्यों ? क्यों बताती ? कैसे बताती !

—लेकिन !

—क्या लेकिन ?

—लेकिन ये तो प्रायः हमारे स्कूल के रास्ते में हमसे मिलते रहे । एक आध बार मुझ से बात करने का प्रयास भी किया था, किन्तु जब मैं बिल्कुल चुप रही तो फिर दूर ही दूर से मुझ देख कर चले आने लगे

प्रियंका की बात सुन कर पीयूष बोला—अरे मुझ से भी मिले थे। अभी थोड़े दिन पहले जब मैं अपनी बाइसिकिल स्कूल के स्टैण्ड से निकाल रहा था तो मेरे पास आकर बोले—पीयूष !—मैंने पूछा—आप कौन हैं, मुझ से क्यों मिलते हैं तो बोले थे—मैं तुम्हारा पिता हूँ।—पिता का शब्द सुन कर मैंने कहा था—मेरा कोई पिता नहीं, आप कोई जालसाज हैं और मैं सायकिल पर चढ़ कर तेजी से घर आ गया था।

यह बात सुनकर शालिनी ने कहा—तुम ने मुझे यह बात क्यों नहीं बताई ?

—मैंने सोचा था घर चलकर मम्मी को जरूर यह बात बताऊँगा, किन्तु घर में सायकिल रखते-रखते ही दीपू आ गया था जिसके हाथ में क्रिकेट का एक नया बैट था। बस उस नए बैट से गेंद खेलने की धुन में मैं सब कुछ भूल गया और मैंने सायकिल रखते-रखते ही आप से दीपू के साथ क्रिकेट खेलने जाने की अनुमति ले ली थी।

× × ×

उन्नीस

शालिनी ने बच्चों की बात सुनी और एक विशेष द्वन्द्वात्मक स्थिति में पहुँच गई। वह इन बच्चों को इनका पिता प्रदान कर इनके सुखों में अभिवृद्धि करे अथवा हरीश को इन बच्चों से दूर रख उसे तरसाये।

वह अपनी जगह पर बैठी-बैठी एकदम से फफक कर रो पड़ी। आँसू बहे तो बहते ही चले गए। प्रियंका और पीयूष ने मम्मी को इस प्रकार रोते देखकर पूछा—आप इतना रो क्यों रही है ?

—क्या बताऊँ, मैं क्यों रो रही हूँ ! मुझ से तुम लोगों के भावी जीवन का सुख छीनते नहीं बन रहा है और तुम्हारे स्वार्थी पिता को किसी भी प्रकार का तोष या तृप्ति देना मुझे सहनीय नहीं।

प्रियंका मम्मी की बात को तुरन्त समझ गयी और बोली—हम अपने भाग्य के स्वयं विधाता है आप ने हमें बहुत कुछ दिया है। हमें आपकी अपनी कहानी की जो झलक आप के साथ रह कर मिली है, हम उसका दर्द समझ रहे हैं। आप कोई भी समझौता हम लोगों के कारण मत कीजिये।

शालिनी ने शाम होते-होते अपने स्कूल के एक चपरासी के द्वारा घर में पड़े पैकट को हरीश की दूकान पर भिजवा दिया।

× × ×

बीस

हरीश ने पैकट देखकर पूछा—इसमें क्या है ? किसने भिजवाया है ?

चपरासी बोला—मेरे स्कूल की शालिनी बहन जी ने भेजा है।

हरीश पैकट खोलने लगा, किन्तु इसी बीच चपरासी तेजी के साथ चला गया। अपने द्वारा भेंट किये कपड़े और मिठाई के बँधे डिब्बे लौटे देख कर उसका

त्रासदी, लेखक बनने की

लेखकीय प्रतिष्ठा के अभियान में व्यक्ति का जब अवमूल्यन अपनी चेतना मे होता है तो उसकी त्रासदी उन तमाम शोषकों और शोषितों की कहानियों से कहीं अधिक तीखी होती है, जिनको लिख-लिख कर वह अपने को एक आधुनिक कथाकार समझता है।

समाज में कहाँ-कहाँ किस-किस रूप में शोषण हो रहा है, वह उस पर अपनी कलम चलाता है, किन्तु स्वयं उसका शोषण कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे हुआ अथवा हो रहा है, उसको प्रस्तुत करने में वह हीन भावना से ग्रसित हो जाता है। लेखकीय समाज की जो अपनी आपस की स्पर्धा होती है, उसके कारण समकालीन लेखक उस पर द्रवित नहीं होते, वरन् उस पर व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ कसते हैं।

मेरे मस्तिष्क में उस दिन ऐसी ही कुछ बातें घुमड़ रही थीं और मैं खरामा खरामा काफी हाउस की तरफ़ बढ़ रहा था। मुख्य द्वार की देहली पर जब खड़ा हुआ तो अन्दर एक भी अपने से परिचित चेहरा दिखाई नहीं दिया। बीच की एक मेज पर कुछ नए लेखक बैठे दिखाई दिए। मैंने उन्हे नगर की दो-तीन साहित्यिक गोष्ठियों मे आते-जाते पहले देखा था। मैं धीरे से उन्हीं के बीच जाकर बैठ गया। उनकी बातें पहले से ही कुछ बड़ी जोरदार चल रही थीं। अचानक उनमें से एक बोला,—साल्ला बड़ा भारी अपने को लेखक समझता था, बिक गया नाऽऽ, उस चाईं प्रकाशक के हाथ। मैं ऐसे प्रकाशकों की नस-नस पहचानता हूँ। मेरी तो पहली ही कहानी तीर हुई थी, छः महीने तक उस पर विचार-गोष्ठियाँ होती रहीं और यही प्रकाशक मेरे पास आया था। मेरा प्रथम कहानी संग्रह छापना चाहता था। मैंने शर्तें पूँछी तो बोला—आपकी किताब छापकर सौ प्रतियाँ आपको निःशुल्क दे दूँगा। मैंने जब साफ़ मना कर दिया तो वह रायल्टी देने की बात करने लगा, लेकिन मैंने उसे घास नहीं डाली।

उसने अपना वाक्य पूरा करते-करते अपने कंधे पर लटके बैग से एक पुस्तक निकाली और मेज पर रख कर बोला,—देखो यह संग्रह है मेरी कहानियों का, 'किंग लोटस' प्रकाशन से छपा है।

इस बात को सुनता हुआ मैं अपने आप में थोड़ा-सा और सिकुड़ गया। वे लोग उस किताब को उलट-पुलट देखने लगे और वहीं फिर बात शुरू हुई वर्तमान पीढ़ी से एक-दो पीढ़ी पहले के उन लेखकों की जो अपने प्रारम्भिक जीवन में उतने ही शोषित

हुए थे जितने अपने निधन के बाद चर्चित हुए। एक ने निराला के लिये आँसू बहाने शुरू किये, तो दूसरे ने मुक्तबोध के लिए। तीसरा बोला—मुक्तबोध एक-एक बीड़ी के लिये तरस गए। दूसरा बोला—शोषण तो प्रेमचंद का भी हुआ था। उनके समर्थ बेटों ने मुकदमें लड़ लड़ कर उनके अनेक उपन्यासों को मुक्ति न दिलाई होती तो शायद वे इतने चर्चित भी न होते और न उनके बेटे ही वह बन पाते जो बन गए।

मैंने इसी बीच कहा—'क्या प्रेमचंद में इण्टेक्चुअलिटी की कमी थी जो वे उस क्षण नहीं समझ पाए जब उन्होंने गैर प्रकाशकों को अपना उपन्यास प्रकाशनार्थ सौंपा था?'

'समझे क्यों नहीं होंगे लेकिन वह समय की माँग थी कि वे अर्थ को महत्व न देकर अपने विचारों के प्रसारण को महत्त्व दे रहे थे।'

'और इन्हीं क्षणों में यदि आज का कोई लेखक ऐसा समझौता कर लेता है, तो क्या वह नम्बर दो का लेखक होगा, यह जरूरी है?'

'नहीं कदापि नहीं।'

'तो फिर उस लेखक ने जिसे अभी आप 'साल्ला' कहते हुए हँस रहे थे, यदि ऐसा ही कुछ सोच कर उस चाई प्रकाशक से समझौता कर लिया तो उसका मजाक उड़ाने का क्या औचित्य है?'

मेरी यह बात सुनकर पुस्तक पटकने वाला व्यक्ति बोला,—'मालूम होता है, आपने भी ऐसा ही कुछ समझौता कहीं किया है।'

'हाँ, किया है!'

'अच्छा! तो आपको भी ठगा गया!' यह एक व्यंग्यात्मक फ़िकरा ही था, किन्तु मैंने पूछा,—'क्या आप मुझे जानते हैं।'

'क्यों नहीं, क्या आप नहीं जानते कि मैं आपको जानता हूँ।'

मेरी यह बातचीत उसी लेखक से हो रही थी जिसने अपनी कहानी की किताब सामने रख छोड़ी थी। उसने कहा, 'आप ठगे जाने की बात न कीजिये, आपको एक प्रकाशक मिल गया यही बड़ी बात है।'

'इसी को कहते हैं लेखकीय ईर्ष्या, मेरा आपसे नैकट्य नहीं, किन्तु मुझे मालूम है आपको इस पर नाज है कि आप एक लेखक के साथ ही विश्वविद्यालय में प्राध्यापक भी हैं। लेकिन विश्वविद्यालय के हर प्रवक्ता को यदि इसकी तमीज़ होती कि वास्तविक लेखन क्या है और लेखक का व्यक्तित्व आंकने का मापदण्ड क्या है तो आज तीन हजार रामचन्द्र शुक्ल होते।'

'रामचन्द्र शुक्ल बनने का मुझे शौक नहीं मैं तो आधुनिक 'प्रसाद' हूँ।'

'प्रसाद बनने के लिये दर्जा आठ पास रवीन्द्र नाथ ठाकुर की श्रेणी में आना पड़ेगा। विश्वविद्यालीय चाबुक काम नहीं आयेगी। निराला की 'चाबुक' काम आयेगी। क्या आपने निराला की 'चाबुक' पढ़ी है? पन्त, निराला, प्रसाद राहुल अथवा मैथिली-

शरण कहीं के न तो एम० ए० थे न पी० एच० डी०, यहाँ तक कि स्नातक भी नहीं, किन्तु जो वे लिख गये उस पर तमाम विश्वविद्यालय पी० एच० डी० बाँट रहे हैं।'

मेरी इस बात को सुनकर वे महाशय अपनी किताब अपने बैग में घुसेड़ते हुए बोले, 'मैं तो चला, आप अपने लेखन पर इन साहित्य प्रेमी छात्रों को डी० लिट० दिलवा दीजियेगा।'

वे चले गये। मैं और मेरे साथ ही उनके तीनों छात्र-लेखक भी उन्हें विस्मय और विद्रूपता से देखते रह गये। उनके जाने के बाद वे बोले, 'जाने दीजिये उन्हें, आप अपने शोषण की कहानी हमें सुनाइये।'

'क्या सुनाएं, देख रहे हैं आप, लेखक की ईर्ष्या लेखक के प्रति। शायद कुत्ते भी इतनी नफ़रत दूसरे गाँव के कुत्ते से नहीं करते।'

'जाने भी दीजिये, हम लोग आपकी पीढ़ी के बाद साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण करने का प्रयास करने वालों में हैं। हम आपकी पीड़ा और उत्पीड़न सुनना चाहते हैं। हम आपके अनुभव का लाभ अपने जीवन में उठाना चाहते है। सुनाइये अपनी कहानी।'

आज के युग में कोई किसी का दर्द सुनने वाला मिल जाय, यह कम उपलब्धि की बात नहीं। मैं आप लोगों को धन्यवाद देना चाहता हूँ। पता नहीं आप मेरे नाम से परिचित हैं अथवा नहीं, मेरा नाम '—' है।

'सुना हुआ नाम है। आपके नाम से और आपकी आकृति से हम अभी तक अलग-अलग परिचित थे, आज ज्ञात हुआ कि आप ही अमुक हैं। सुनाइये अपनी बीती कहानी।'

मैंने थोड़ा-सा मुस्कराकर उनकी ओर देखा और बोला, 'पुस्तकों और प्रकाशकों का नाम मात्र सांकेतिक लूँगा, क्योंकि नाम लेने से मेरी ही और हानि हो सकती है। मेरा एक उपन्यास है 'च'। आज वह थोड़ा चर्चित हुआ है, क्योंकि उस पर एक पुरस्कार मिला है, हालांकि बहुत छोटा पुरस्कार है फिर भी स्पर्धा में आये पचास लेखकों की कृतियों के बीच से उभर कर रेखांकित हुआ है। इसका प्रथम संस्करण पुस्तक के रूप में जब कोई प्रकाशक छापने को तत्पर नहीं हुआ था तो एक पत्रिका के विशेषांक का सम्पूर्ण कलेवर बनाकर उसे प्रकाशित होने दिया गया था। १९६१ में यह प्रकाशित हो गया था, किन्तु साहित्यिक क्षेत्र में किसी ने इसकी नोटिस नहीं ली थी, हाँ वृन्दावन लाल वर्मा और रजनी पनिकर के प्रशस्तिमय पत्र मिले थे। विशेषांक प्रकाशित करने वाली पत्रिका के संचालकों ने बिना मुझे बताए एक हजार प्रतियाँ सफ़ेद प्रिंटिंग पेपर पर भी छाप कर बेच ली थीं, किन्तु मुझे पारिश्रमिक के रूप में केवल सौ रुपये और सौ प्रतियाँ न्युज़प्रिंट कागज वाली मिली थीं, जो अधिकतर मुफ्त बाँट दी गयी

बीस वर्ष बाद उस का पुस्तकालय मैंने स्वयं

चालीस प्रतिशत से सत्तर प्रतिशत तक कमीशन देकर सात सौ प्रतियाँ बेचीं, पचास प्रतियाँ भेंट में चली गयीं। ढाई सौ प्रतियाँ लागत मूल्य पर डेढ़ हजार में बेंच कर संस्करण समाप्त किया, किन्तु इन बची प्रतियों के खरीदार ने मात्र पाँच सौ रुपये देकर बाकी एक हजार रुपये देने से लगभग इन्कार कर दिया, बोला,—जब पैसे होंगे दे देंगे, वादा-आदा तो व्यापार में होता रहता है। वादे की लिखित तारीख के बाद जब साल भर बीत गया तो इस एक हजार रुपये को वसूलने के लिये तीन सौ रुपये वकालतनामे और वकील की फीस के लिये दे आया। यह कार्रवाई करने के बाद मैंने नगर के कुछ साहित्यकारों को उस प्रकाशक की नियत की कहानी बतायी किन्तु किसी ने भी मेरी ओर से न तो उसको कोई ताड़ना दी न सद्‌बुद्धि। वह अपनी 'सम्पर्क' पत्रिका के बहाने उन लोगों को चर्चित करते रहने का आश्वासन देता है और कोई भी लेखक मेरा पक्ष निःस्वार्थ होकर नहीं लेता।

कचहरी में वाद सम्प्रेषित करने के तीन महीने बाद पहली तारीख लगी तो उसी दिन अधिवक्ताओं की हड़ताल हो गयी, दूसरी पेशी पर कोर्ट लग जाने के बाद जन्माष्टमी की छुट्टी घोषित हो गयी। तीसरी तारीख लगी तो पेश्कार ने उस दिन बताया कि प्रतिवादी को सम्मन नहीं भेजा जा सका, चौथी तारीख में ज्ञात हुआ सम्मन भेजा गया किन्तु प्रतिवादी शहर के बाहर था अतः उसे थमाया नहीं जा सका। पाँचवी तारीख पर कचहरी में ज्ञात हुआ कि सम्मन प्रतिवादी के घर के दरवाजे पर चिपका दिया गया है। अगली पेशी में वह अवश्य आये इसलिये हाकिम ने हुक्म दिया है कि एक सम्मन डाक रजिस्ट्री से और दूसरा दस्ती (हाथों हाथ) भेजा जाय। इस काम के लिये मुझे बारह रुपये दस्तूरी के खर्च करने पड़े। अफ़सोस सम्मन फिर भी थमाया नहीं जा सका। क्यों नहीं थमाया जा सका इसका उत्तर देने वाला कोई नहीं था। अब दस्तूरी के दस रुपये फिर दिये गये। सातवी तारीख पर ज्ञात हुआ कि प्रतिवादी ने जाने कब कोर्ट में आकर यह अर्जी लगा दी कि सम्मन तो मिला किन्तु हम पर आरोप क्या है और यह कैसा मुकदमा उस पर चलाया गया है, उसे कुछ नहीं मालूम। वादी के आरोप की प्रति दी जाय। पेश्कार साहब ने सलाह दी आप एक सप्ताह के अन्दर आरोपों की प्रति प्रतिवादी के वकील को हाथों हाथ दे दीजिये। मैंने कहा यह काम तो कोर्ट का है और हमारे वकील ने पहिले ही रजिस्ट्री द्वारा उसे सूचित किया हुआ है किन्तु पेश्कार ने कहा, आप अपने केस की मजबूती के लिये फिर स्वयं कार्रवाई करें। हमारे वकील ने भी यही कहा कि पेश्कार साहब जो कह रहे हैं चुपचाप उसे करना है, अतः कचहरी में दाखिल वाद-पत्र की प्रतिलिपि स्वयं टाइप कराकर प्रतिवादी के वकील को थमा आया। दो महीने बाद की तारीख फिर लगी। वह तारीख भी आई और उसके बाद मात्र तारीखें लगती रहीं, मुकदमें की पेशी तक नहीं हुई। तीसरा साल बीतने पर जब फिर तारीख मिली और शाम को चार बजे तक उस दिन भी मुकदमा पेश नहीं हुआ तो मैं क्रोध में आकर बलात् जज सफ़ीफा के सामने

चिल्लाकर बोला—आप न्याय करते हैं कि मात्र न्यायालय चलाने का नाटक ?

जज अचकचा कर मेरी ओर आँखें तरेरता हुआ बोला,—'कण्टेम्प्ट आफ कोर्ट मे अभी आपको बन्द करा दूँगा।'

'बन्द करा दीजिये, कम-से-कम खुलकर कुछ बहस तो इस नये मुकदमे के बहाने हो जायेगी।'

जज ने पेश्कार से पूछा कि क्या मामला है, मुकदमा क्यों नहीं बढ़ पाया। पेश्कार ने फाइल निकालकर कहा—मुकदमा फिर से जीवित होने के बाद प्रतिवादी को सम्मन दाखिल नहीं हो पाया। जज साहब ने बहुत धीरे से मुझसे कहा—अखबार मे नोटिस छपा दीजिये। अगली पेशी में यदि प्रतिवादी नहीं आया तो एकतरफ़ा फैसला दे दूँगा। मेरे वकील ने तुरन्त इसका समर्थन किया और मुझे कोर्ट के बाहर लाते हुए बोला—चलो डेढ़ सौ और खर्च कर दो, मुकदमा तो जीतना है, सब वसूल हो जायगा।

अखबार में नोटिस निकाल दी गयी और तब से तीन-तीन महीने के अन्तराल की फिर मात्र तारीखें मिल रही है, क्योंकि हर निर्धारित तारीख़ को किसी-न-किसी बहाने कोर्ट बन्द हो जाता है। न्याय अभी तक नहीं मिला।

प्रकाशन की तारीख़ से लेकर इस मुकदमें तक जब पाँच साल बीते और मेरी तथा मेरे प्रकाशन अभियान की जब पूरी दुर्दशा हो चुकी तो संयोग से इस उपन्यास की कुछ पहचान हुई और हिन्दी संस्थान ने एक सांत्वना पुरस्कार दे दिया। ये राशि भी पुरस्कार घोषणा के कई महीने बाद मेरे आँसू पोछने के काम आयी, यानी मुकदमा चलाने में व्यय हो रही है।

१९७० में मेरा दूसरा उपन्यास 'श' छपा था। जिस प्रकाशक से अनुबन्ध हुआ वह स्वयं एक बड़े प्रकाशक के यहाँ काम करता था। मन में साध जगी कि पुस्तक उस बड़े प्रकाशक के यहाँ से छपे। इच्छा प्रकट की तो पता नहीं कैसे उसने वह पुस्तक उस बड़े प्रकाशक के लेबिल से छपवा दी। मैं बहुत प्रसन्न हुआ, किन्तु रायल्टी के नाम पर मुझे एक पैसा भी नहीं मिला। बड़े प्रकाशक के व्यवस्थापक से मिला तो बोला—आपके साथ हमारा कोई अनुबन्ध नहीं था, जिससे अनुबन्ध हुआ है उससे रायल्टी माँगिए। मैंने कहा—किन्तु पुस्तक तो आपके प्रकाशन से छपी है। उसने कहा वह बेइमान है, उसने आधी किताब अपने प्रकाशन के नाम से छापी है और आधी इस नाम से, हम उसके खिलाफ़ कार्रवाई करेंगे, आप उससे पैसे वसूलें। कई महीने तक उस प्रकाशक से भेंट नहीं हो पाई। एक दिन सड़क पर मिल गया तो बहुत नम्रता से बोला—मैं टूर पर था, आपकी किताब लगभग सब बिक गई है, रायल्टी मैं दूँगा। दो महीने बाद एक दिन उसके घर पहुँचा तो फिर बहुत नम्र शब्दों में बोला—आपकी किताब की कुछ प्रतियाँ जो उस प्रकाशन के नाम से छपी थीं उसका पैसा अभी मुझे उनसे मिलना है, मैं आपको एक साथ सब हिसाब करके दूँगा। तीन महीने फिर बीत गए तो एक दिन वह फिर पकड़ में आया बोला बहुत जल्दी पैसे दूँगा आप हम

'किन्तु यह तो बहुत कम है। आप यदि ४०) दाम रख कर एक हजार प्रतियाँ ही बेंच दें तो मात्र दस प्रतिशत रायल्टी की दर से मुझे ४०००)रु० मिलने होते हैं'

'ऐसा गणित मत लगाइये, यह भी सोचिए कितने साल में किताब बिक पाएगी।'

मैं चुप रहा तो स्वयं आगे बोले,—'चलिये आपको डेढ़ हजार दे दिये जायेंगे। स्वीकार हो तो अनुबन्ध तैयार कराऊँ। किताब छः महीने में छप कर सामने आ जायेगी, टॉप का गेटप दूँगा।'

'कुछ और दे दीजिए।'

'ठीक है कुछ और भी दे दूँगा, किन्तु किताब की आधी बिक्री के बाद, दो-सौ और।'

'ठीक है, अनुबन्ध तैयार करा दीजिये।' बीस मिनट के अन्दर अनुबन्ध सामने आ गया। बाइस सौ प्रतियों के प्रति संस्करण पर डेढ़ हजार रुपए। विवशता भरे मन से हस्ताक्षर कर दिये और डेढ़ हजार की चेक अपनी जेब में रखता हुआ वहाँ से चला आया। बुद्धि, आयु और अनुभव का मूल्य तो दूर उँगलियों की मजदूरी भी नहीं मिली थी। किताब नौ महीने बाद छपकर मिली। बहुत अच्छी छपी थी, २२०० का संस्करण था और मूल्य था पचास रुपए। आँखें खुली रह गयीं। उपन्यास की दस प्रतियाँ मनार्थ मिलीं। दसों केवल रिश्तेदारी में बँट गईं। साहित्यकारों को देने के लिये प्रति पुस्तक ३०) रु० देकर मैंने दस पुस्तकें खरीदीं और समकालीनों को भेंट कर दी। दुःख यह है कि दो-तीन को छोड़ कर किसी भी लेखक या सम्पादक ने पुस्तक पर चार पंक्तियाँ भी लिखकर मुझे नहीं दीं।

उन नौजवानों ने मेरी बातें बहुत ध्यान से सुनीं और हमारी इस व्यथा-कथा के बीच कब काफ़ी आई और कब हम लोग पी गए, कुछ पता ही नहीं चला। कहने के लिये मेरे पास अभी बहुत सी बातें थीं किन्तु एक ही साँस में इतनी बातें कह चुका था कि मन खिन्न होकर रह गया था। हम लोग वहाँ से उठे। कुछ दूर मौन चलने के बाद उनमें से एक नौजवान बोला,—'लेखकों के जीवन में ऐसा कुछ घटता रहता है यह बात हम लोगों ने पहले भी सुनी थी, किन्तु भुक्त भोगी के मुख से आज ही सुन सके।' मैं थोड़ा सा मुस्कराया और बोला—'आप आत्मश्लाघा न मानें तो मैं एक बात और कहना चाहता हूँ।'

'कहिये कहिये।'

'लोग लेखकीय स्पर्धा में दूसरे पर अन्याय होते देख कर भी इसलिये चुप्पी साधे हैं कि उनके बोलने से कहीं उसे प्रधानता न मिल जाए। कहीं चर्चित न हो जाय। वैसे मुझे पता है अगर कहीं अचानक मेरी मौत हो जाय और यदि एक भी प्रभावशाली स्थिति में बैठा हुआ व्यक्ति करुणा भरी वाणी से मेरे बारे में बोल गया तो बाकी सब (सियार की तरह) सैकड़ों संस्मरण गढ़-गढ़कर सुनाने लगेंगे।'

हम लोग काफ़ी दूर तक पैदल ही बात करते चले आ रहे थे। पैलस सिनेमा

के पास वे बोले,—'हमारा एक मित्र यहाँ स्थानीय दैनिक में पत्रकार है, कहिए तो यह सब अखबार में छपवा दूँ।'

'नहीं अभी रहने दो।'

....

कुछ महीने बाद मुझे एक साहित्यिक गोष्ठी में वे ही छात्र फिर मिले। मुझे तब तक मेरी एक कहानी की किताब पर एक साहित्यिक पुरस्कार और मिल चुका था। उन्होंने मुझे देखते ही बधाई दी। मैं मुस्कुराया तो उनमें से एक ने धीरे से पूछा—'इस किताब के पीछे भी क्या कोई संस्मरण है ?'

मैंने हँस कर कहा—'हाँ है, इस पुस्तक का प्रकाशक बहुत नामी था, उसने किसी ज़माने में, उस ज़माने के सभी नामी लेखकों की पुस्तकें प्रकाशित की थीं, किन्तु हमारी पुस्तक छापने के बाद वह अपने नामी-गरामी प्रकाशन गृह में बिना किसी नोटिस के ताला लगा कर शहर से बाहर भाग गया है।' □